

सरहपाद

१ (२२)¹

अपने रचि रचि भवनिर्वाणा² ।
मिथ्ये³ लोथ बन्धावण अपणा ॥
अम्हे⁴ ए जाणहुँ अचिन्तजोइ ।
जाम मरण भव कइलए होइ ॥
जइसी⁵ जाम मरणहि तइसी ।
जोवन्ते मइलें⁶ याहि विरोलो ॥
जा एतु जान मरणे बिसङ्का⁷ ।
सो करउ रख रस्तानेरे कइल ॥
जे सचराचर तिअस भगन्ति ।
ते अजरामर किमि न होन्ति ॥
जामे काम कि कामे जाम ।
सरह भणति अचिन्त सो धाम ॥

× × ×
अपने रचि रचि भव निर्वाणा ।
मिथ्ये⁸ लोक बन्धावण अपणा ॥
हम न जानी अचिन्त योगि (गी) ।
जन्म मरण भव कइसन होइ ॥
जइसे जन्म मरणो तइसे ।
जोने मुइने नाहि विरोपे ॥
जे एत जन्ममरणे बिसङ्का ।
सै करओ रस रसायन (व) कक्षा ॥

१। लोथ-लंछना; भवनिर्वाण-चगीको, च० वि० पोथीक सप्तद्वीतक संख्या विक ।

२। सेन-विवाण ३। सेन-अग्ने ४। सेन-जइए

५। चगीको; शारदी, सेन-मइलें ६। सेन-वि-कइल

जे सचराचर त्रिदश (पुर) भगधि ।
 से अजरामर किमधि (किछु) न होधि ॥
 जन्मे कर्म की कर्मों जन्म ।
 सरह भगधि अचिन्त्य से धर्म ॥

जगतक बन्धन आ' मोच' एहि दून् विकल्पके रचि रचि, कपोल-कल्पित
 कद, व्यर्थे लोक अपनके बन्धैत अछि । हम तँ अचिन्त्ययोगसिद्ध भए गेलहुँ
 (परमात्मलीन भए गेलहुँ), आव' तँ बुझवहिमे नहि अवैत अछि जन्म-मरण
 लक्षित जगतक स्वरूप केहन छैक । हमरा हेतु तँ जेहने जन्म तेहने मरण, कारण
 जीवनमुक्त छी (जीवित रहितहुँ मोक्ष प्राप्त कएने छी) । आव' जीवन की ?
 आ' मृत्यु की ? दून्मे कोनो विशेष नहि प्रतीत होइत अछि । जकरा जन्म-
 मरणक विकल्प रहैत छैक से रस (-सिद्धिक पश्चात् परमानन्द) तथा रसाय-
 नादि द्वारा योगसाधनाक इच्छा करैत अछि । जा' धरि आत्मा चराचरलोकने,
 मृत्युमुक्त आ' स्वर्गमे, भ्रमण करैत रहैत अछि ता' धरि ओ अजर अमर (मुक्त)
 नहि मानल जाएत (स्वर्गहुँ तँ पुण्यद्वय भेला पर पतन देखले गेल अछि) ।
 मुक्ति ओएहि थिक जकर पश्चात् आत्मा नित्य अविनाशी आनन्दमे लीन भए
 जाइत अछि । सरह कहैत छथि, हमरा एहि विवादमे नहि जेबाक अछि, हम
 इन्ह जैत छी जे वस्तुतः एके वा वाम (पवित्र लक्ष्य) अछि, ओ थिक
 अनुत्तरत्वज्ञान, शिवत्वज्ञान, जे अचिन्त्य थिक, अबाध मनसगोचर थिक ।

२ (३२)

नाद न बिन्दु न रवि शशि मण्डल^१ ।
 विश्वराज सहाजे मुकुल ॥
 उजु रे उजु^२ छाड़ि मा लेहु रे वज्र ।
 निअछि^३ बोहि मा जाहु रे लाङ्ग ॥
 हाथे रे^४ काङ्कण मा लेउ दाण ।
 अपणे अपा बुझ तु निअमण ॥
 पार उधारे^५ सोइ मजिह^६ ।

१। चगीको । शास्त्री, सेन—न शशि (रवि) मण्डल

२। सेन—उज्जु रे उज्ज ३। चगीको । शास्त्री—निअछि । सेन—निअछि

४। सेन । शास्त्री—हाथे ५। चगीको । शास्त्री, सेन—गजिह

हुज्ज साहजे अवसरि जाइ ॥
 थाम दाहिण जो खाल बिखला ।
 सरह भएइ थापा^१ उजुवाट भाइला ॥

× × ×

नाद न बिन्दु न रवि-शशिमण्डल ।
 चित्तराज स्वभावे^२ मुकुल (मुक्त) ॥
 सोझ रे । सोझ छाड़ि न लएह वज्र (१) ।
 निअर बोधि न जाहु रे । लाङ्ग (१) ॥
 हाथे रे । काङ्कण न लएह दण ।
 अपने आत्मा बुझन सो निज मन ॥
 पार उधारे^३ से डूवए (मज्जति) ।
 दुर्जन तज्ज (जे) अपसरि जाए ॥
 थाम-दाहिण जे खडा-खुडी (छल) ।
 सरह भएइ थाप । सोझ वाट भेल ॥

चित्तक शोधनक हेतु नाद, बिन्दु, रवि-शशिमण्डल कथक साधनक
 प्रयोजन नहि । चित्तराज स्वभावतः मुक्त छथि, हुनका सोझ वाटपर जाए
 दहुन, हेद वाटपर नहि । विकटहिमे बोधि, परम प्रकार-विमर्श-बोध प्राप्त
 होएतह, तखन चित्तके दूर देश लाङ्ग दिशि नहि लए जाइ । शरीरहिमे समस्त
 ब्रह्माण्ड तथा सबक सार तत्त्व शिवशक्ति छथि तखन ओहि परम सत्ताके देहमे
 नहि ताकि अनतह की सकैत छह ? हाथमे कगना तखन अपणक काने की ?
 अपनहि आत्माके अपन मनके चिन्हह, आत्म-बोध भेला पर अपन मनके
 चिन्हए जणवह । जे दुर्जन (अन्य सम्प्रदायक पोषक अचार्य) क सङ्गमे पड़ि
 जाइत छथि आ' एहि सहजमार्गके अपस्तृत भए जाइत छथि से जगतक पार-
 धारीमे डूबि जाइत छथि, जन्ममरणक चक्रने नष्ट भए जाइत छथि । सरह कहैत
 छथि, वाम-दाहिण मार्गमे जे खडा-खुडी छल से सब एहि वाटमे नहि रहल ।
 ई वाट, कौलमार्ग, सोझ वाट भए गेल ।

३ (३८)

काय एवहि^१ खाखि मण केहुआल ।
सदगुरुवचने धर पतवाल ॥
बीख बिर करि घरहु रे नाइ^२ ।
आन^३ उपाये पार न जाह ॥
नौ वाही^४ नौका दाखअ गुण^५ ।
मेलि मेलि^६ सहजे जाउ ए आखे ॥
बाइत भअ^७ खाएट वि^८ बलाया ।
भव उलोले^९ विषय बोलाया^{१०} ॥
कुल लइ खर सोते^{११} उजाह ।
सरह भणइ गअणे^{१२} समाअ^{१३} ॥

X X X

काय नावक खुट्टी मन कइआरि ।
सदगुरुवचने धर पतवार ॥
चित्त बिर करि घरहु रे नाव [ह] ।
आन उपाये पार न जाह ॥
नाव वाही नौका दाख गुण^५ ।
मोलि मोलि रह्ये^६ जाउ न आने ॥
बाटे भय लखी यही ।
भव - उल्लोले^९ विषय तोड़ी [तोड़ि] ॥
कुल लइ खर सोते^{११} उजाह ।
सरह भनधि [तो] गगने समाह ॥

१। सेन-एवविह २। सेन-नाइ। तु० मैथिली 'नाइ' (निम्नवर्गक शब्द)

३। चमोको। शास्त्री, सेन-अन

४। सेन-नौवाही ५। सेन-उपाय अगुणे ६। चमोको। शास्त्री, सेन-मेलि मेल

७। चमोको। शास्त्री, सेन-बाट अमथ

८। चमोको। शास्त्री-खाएटवि। सेन-खाएटवि

९। सेन-वि बालिया १०। सेन। शास्त्री-बोले ११। सेन-पमाह

१२। सेन-वज्रहिआ शब्द प्रत्यय

कायके नौका बनाए आ' तकर खुट्टी (अनाहतचक्र) से बान्हल मनके
कइआरि बनाए सदगुरुवचनके पतवार (कर्णधार इ० बागची) मानि पकड़ह ।
चित्तके बिर करे एहि नावके, शरीरनौकाके, पकड़ि आगो बड़ह । आन
उपायसे भवसागर पार नहि कर सकवह । बाह्य जगतसे नौका-बाह्य अन्य
गुण (वा रसी) से नाव खेवैत अहि, एहि मार्गसे ओहिसम गुणक प्रयोजन
नहि, सहजस्वरूप शिवशक्तिक अन्तरङ्ग बनि आगो बड़ह, आन रीतिसे
नहि बड़ह । बाटसे भयासव तत्त्व वा यदना भेटवह, प्रतीत होएतह जे खड्ग
धारण करने दानवीय जीव तोरा पथच्युत करवाक हेतु कालाचक्रपमे जगल
छह, आ' भव-उल्लोलक प्रसङ्गसे अतुभूत विषय-वासनाके तोड़ि, कुलाश्रित
भए, शक्तिक आश्रित भए (कौलमार्ग^१), भवसागरक प्रखर स्रोतसे आगो बड़ह
पार करह । सरह कहैत ब्रह्मन्-तो शून्यगगनमे अन्तर्लीन भइ जाह, नइती-
शक्तिक अभिन्न बनि जाह ।

४ (३९)

सुइया ह अविदार अरे निखमन तोहोर दोसे^१ ।
गुरुवचनविहार^२ रे भाकिष तइ बुझ कइसे ॥
अकट हूँ भव इअण^३ ।
बड़ो जाया निसेसि परे भागेल तोहोर विणाय^४ ॥
अदभुअ भवमोह रे दिसह पर अपण^५ ।
ए जग जलविन्वाकारे सहजे^६ मुख अपण^७ ॥
अनिआ अन्धन्ते^८ बिल गिलेसि रे चिअ पररस अना ।
पर-पर^९ का^{१०} बुझिले मारि^{११} खाइ भइ दुठ कुण्डवा^{१२} ॥
सरह भणन्ति वर मुण गोहाली कि मो दुठ^{१३} बलन्ते^{१४} ।
एकेले जग नाशिअ रे बिहरहु सुन्धन्ते^{१५} ॥

X X X

रूपना हूँ ! अविद्याक अरे । निज मन दोषे^१ ।
गुरुवचनविहारे रहवह तो चूणि कइसे ॥

१। सुइये दक्षिण विहार रे निख मन तोहोर दोसे-चमोको

२। सेन-हूँ भव पणय ३। चमोको। शास्त्री-धरे परेक। सेन-पारे पारे का

४। चमोको। शास्त्री-रे। सेन-म रे ५। सेन-दुइय

६। चमोको। शास्त्री-विहरहु सुन्धन्ते। सेन-बिरहु ईश्वर

अकट^१ हूँ-भव ई गगना ।

बज्जे जाया लेलह, परे भागल सोहर विज्ञाना ॥

अबुमुत भवमोह रे ! देखाइ पर अपना ।

ए । जग जलविम्बाकारे^२ सहजे^३ सुन अपना ॥

अभिन्न अछैते^४ विष मिड़ति रे । चित पररस आत्मा ।

वर-पर की बुललह रे ! मारि छाएथ हम दुष्ट कुण्डवा ॥

सरह भणवि कर सुन गोशाला, कि मोर दुष्ट बलदे^५ (बड़वे) ।

अकेले जग नाशल रे ! चिहरह स्वच्छन्दे ॥

हे ! अरे ! तोहरा अपन मन अविद्या-दोषे^६ यथार्थ प्रतीत होइत छह, किन्तु वस्तुतः ओहि प्रतीतिके^७ अवाधार्थ स्वप्न सदृश मात्र बुनह अथवा [डॉ० यागची-संस्करणक अनुसार] शून्यरूप हाथसें तौ^८ अपन मनके^९ विदारण करह, दोष दूर करह । गुरुवचन-विहारमे तौ^{१०} कोना छूमि सकबह ? अखन तोहर मन एतेक दोषग्रस्त छह तखन ओ विहार कोना कर सकबह ? ई हूँबीजोद्भव गगन अखण्डनीय अक्षि अथवा ओ गगनद्वया हूँ-बीजोद्भवा महाभाया अखण्डा छथि । देखह, तौ^{११} जहाँ बज्ज-जायाके^{१२}, शून्यस्वरूपिणीके^{१३}, जायाभाये^{१४} स्वीकार कएलह कि परछये तोहर मोहादिविज्ञान दूर भए गेलह । एहि संसारक मोह अबुमुत, पर-अपन एहन भेद प्रतीत होइत रहैत अछि । किन्तु तत्त्वदर्शिके^{१५} ई जगत् जलमे प्रतिबिम्ब जकाँ, चिद्वसनक प्रतिबिम्ब जकाँ, महती शक्तिक आभास मात्र जकाँ, प्रतीत होइत अछि । एवं ओ अपनके^{१६} सहज-साधना द्वारा शून्य आत्माक रूपमे देखैत छथि । हे चिका ! असुत (अमरत्वक साधन शक्ति-साधना आ^{१७} तकर परिणाम सामरस्य) क अछैते (ओकर सुविधा रहितहुँ) तौ^{१८} विष (-सदृश विषय) मिड़ैत छह, रे आत्मन् ! तौ^{१९} पररस (इतर पदार्थक रस) मे डुबाए मोहादिके^{२०} अभिन्न बनवैत छह । तौ^{२१} वर-पर एहन भावना की रखैत छह ? आथ हम महाबुद्धाक आतिथन कए सम विषयवासनाक मूल उत्सहिके^{२२} मारि चिका जाएव (कुचित्तहिक चिनाश कए लेव) । सरह कहथि—की हमर पवित्र गोशाला (इन्द्रियशाला), शून्यक अधिष्ठान कायपीठ, बलद (बड़वा या मलिन विष, दुष्टक हेतु बलदे-विहार विष) से^{२३} दुष्ट बनि गेल ? नहि । हम एकसरे विष (क वन्दन) के^{२४} नाश कर देह । रे चिन्मय चित ! स्वच्छन्द भए विहार करह ।

शबरपाद

१ (२८)

डँचा डँचा पावत तहिँ बसइ सबरी बाली ।

मीरद्विपीच्छ परहिण सबरी गिवत गुञ्जरी माली ॥

उमत सबरो पागल सबरो मा कर गुली गुहाडा तोहोरि^१ ।

निअ घरिणी नामे सहज सुन्दारी ॥

नाना तरवर मौलिल रे मथणत लागेली डाली ।

एकेली सबरी ए वण हिण्डइ कर्णकुण्डलवञ्जारी ॥

विअ भाउ खाट पाड़िला^२ सबरो महाबुदे सेजि छाड़ली ।

सबरो भुजङ्ग नैरामणि^३ दारी पेन्ह राति पोहाइली ॥

हिअ ताँबोला महाबुदे कापुर खाइ ।

सुन नैरामणि कण्ठे लइआ महाबुदे राति पोहाइ ॥

गुरुवाक् पुण्ड्रआ^४ विन्ध विन्धसण वार्ये^५ ।

एके शरसनधामे^६ विन्धइ विन्धइ परमविचार्ये^७ ॥

उमत सबरो गरुआ रोषे^८ ।

गिरिवरसिद्धरत्नवि पइसन्ते सबरो लोडिअ कइसे ॥

× × ×

अँच अँच पर्वत ताहि वसइ सबरी बाली ।

मीर-अङ्ग-पुच्छ पहरिन सबरी शीघमे गुञ्जामाली ॥

उन्मत शबर । पागल शबर ! न कर गुली^९ गोहारि, तोहार ।

निज घरना नामे^{१०} सहजसुन्दरी ॥

नाना तरवर मौलिल रे । गरवहि लागल डारि ।

अकेली शबरी ऐ वन शूलइ कर्णकुण्डलवञ्जारी ॥

विधातु खाट पडल शबर महाबुदे^{११} सेज ओछामोल ।

शबर भुजङ्ग नैरामा दारिका प्रेमे^{१२} राति पोहाओल ॥

१ । बगीची । शारही, सेन—गोहरी

२ । सेन—वहिला ३ । सेन—ऊड़शामणि

४ । बगीची (पा० डि०) । शारही, सेन—गुरुवाक पुण्ड्रआ ५ । सेन—गर आस रोषे

६ । गृहमे लीन, वास्ते, आनन्दादि विकल्प

हिय-लाम्बूया महामुखे कपूर खाइ ।

हून नैरात्मा कण्ठे लए महामुखे राति बोहाइ ॥

गुरुवाक्-पुच्छे^१ बेध मित्र मन धागे^२ ।

एके शरत्तन्धाने^३ बेधहु बेधहु परमनिर्वाणे ॥

उन्मत्त शबर गहम रोये^४ ।

मिरिखर शिखर-तन्धि पैसैते शबर लठ्ठ कइये^५ ॥

ऊँच सुमेरुशिखरपर चिन्मयी ज्ञानमुद्रा बसैत छधि, हुनक भ्रान्त नव-
यौवना जकाँ कपल जाइत छधि । हुनक परिवान मयूर-पुच्छ सदृश चित्र-
विचित्र भाव-विकल्प, श्रीवामे गुरुजामाला सदृश धर्ममाला । ओ शबरपादके
कहेत छधि—हे वताह शबर ! तौ हमरा मुद्रा (मेरुमुद्रा) ने लोन कए विकल्प
दिशि जगथाक हेतु (विमल धारण करवाक हेतु) मोहारि नहि करह । दूसरा तौ
अवन अभिज्ञ, आत्माभिज्ञ गृहणी हुनहु, हय नामहिसेँ सहजसुन्दरी, विपु-
र-सुन्दरी, स्वतः चिरन्तन सुन्दरि छी, हमरा तौ ओही सहज स्वरूपने विहार
करए दण्ड । लाना अविद्याजनित वीरलभ ओहि सहस्रारस्य (महामुख-
वक्रस्थ) शून्यस्वरूप ब्रह्मे लटकल छधि, ओहि समस्त वस्तुतः ओ वृत्त कोपल
भए मौलागल प्रतीक होएत (भ्रान्त देलासेँ) । विषय-वासना कोनो सज्ज नहि, (शुद्ध
शून्यरूपा) शबरी ज्ञानमुद्रा (विमर्श स्वरूपिणी) एकसरे पहि सुमेरुपर्वतपनमे
(चित्त) मगकोपर झुलैत छधि; कानमे वक्रता (वक्र वा प्रपञ्च) क प्रतीक
कुचल तथा वल (शिवक पुं-चिह्नक प्रतीक) धारण कएने छधि^१ । काय, वाक्
तथा चित्त पहि तीन तत्त्वक छाठपर पड़ि शबर सागरस्वमे (क हेतुनेँ) शय्या
विछाए लेल । मुक्तजबरी शिवरूप बनल शबर अपन कलेशविदारिणी, त्रिविधता-
संहारिणी अर्थोक्तिनी पहि नैरात्माक प्रीति-लोलाक सज्ज राखि (कुण्डलिनीयोगक
अवधि) बिताओल । हयक महाराज-तान्त्रिक आ' खामरस्यसौरभयुक्त कपूरक
भोग कएल । शून्य-चिन्मयी महामुद्राकेँ कण्ठमे (विशुद्धचक्रमे) लगाए अहं-
भावसेँ शिवरूपमे राक्षसजड भए राति बिताओल । हे बालयोगिन् ! गुरुवाक्-
पुच्छयाएलें कुचिकेँ लक्ष्य कए बेध करह, कुचिन्तक विनाश करह, तदनन्तर परम
मोक्षक भेद एकहि संधान (गुरुसन्धवल) लेँ करह । गुरुतर रोये उन्मत्त शबर
सहस्रारपर वा मेरुशिखरपर, वामदक्षिणक सन्निवस्थलमे प्रवेश कए परमपद,
परमशिवरूप लाभ कएल । आव शबर मायासेँ, विषय-वासनासेँ, लहलह
कोना ? आव तँ ओ मुक्त भए गेल छधि ।

१. ऊपर एकधरे से परमनिर्वाणे विरहितता नहि, सङ्कोचित छधि, कारण ई-डी-ने
'वक्रमुचयशान्ति' विरुद्ध' बेल छधि । ओ वक्र वा उपाय शिव (३० बाइँ भूमिका
अनु-०३) नामल जाइत छधि । 'एकधरे' से केवल शबररूपविरहितता बुझावक
थिक [३० ई-डी-०] ।

२ (५०)

गमनगत गमनगत तइला बाड़ी^१ हेकचे कुराड़ी ।

कण्ठे नैरात्मा बालि जागन्ते बपाड़ी ॥

छाड़ु छाड़ु^२ माया मोहा विषम दुन्दुली ।

महामुद्रे बिलसन्ति शबरी लइआ सुणमेहेली ॥

हेरि से मेरि तइला बाड़ी लखमे समतुला ।

सुकड़^३ ए से^४ रे कपासु फुटिला ॥

तइला बाड़ि पारसेँ जोड़ाबाड़ी वपला^५ ।

फिटेलि अन्धारि रे आकाशकुलिआ ॥

कङ्कुरि^६ पाकेला रे शबरा शबरि मानेला ।

अणुदिन^७ शबरी किमि न चेवइ महामुद्रे भोला ॥

बारि बासे गड़िला रे दिआ^८ बकवाली^९ ।

तहिँ तोलि शबरी डाह कपला कान्दइ सगुणशिखली ॥

मारिल भवमत्ता रे दह दिहे दिधलि धली ।

हेर से सवरो निरेवण मइला फिटिलि स्वराज्ञी^{१०} ॥

× × ×

गमन-गमनमे तेसर बाड़ी निकसोरि कुठारी ।

कण्ठे नैरात्मा बाला जगैते उषाड़ी ॥

छाड़ छाड़, माया मोहा विषम दुन्दुला ।

महामुद्रे बिलसीत शबर लए सुगमहिआ ॥

हेरि से मोर तेसर बाड़ी लखमे समतुला ।

हुकल हे ! ते रे ! कपास फुटला ॥

तेसर बाड़ीक पासे उषोत्पन्नाबाड़ी बगला ।

फाटल अन्धार रे ! आकाश फुलएला ॥

१. तेन—बाइँ २. चगीको । शास्त्री, तेन—छाड़ु छाड़

३. चगीको । शास्त्री, तेन—पुच्छ ५. तेन—एसे

४. तेन—जाएला ६. चगीको । शास्त्री, तेन—कङ्कुरि

७. चगीको । शास्त्री, तेन—अणुदिन ८. चगीको । शास्त्री, तेन—३ दिवस ।

८. चगीको—३० डी० क प्रपञ्च १०. डी० 'अवशाली' पाठ द्रष्टव्य ।

१०. चगीको । शबरी—बवराजी

कङ्कूरि पाकल रे। शबर शबरी मातल।
 अनुदिन शबर किमपि [किछु] न देखइ महामुखें मोल [र] ॥
 बारि बासे गढ़ि रे ! देल चञ्चाली (चण्डाली) ।
 तहँ तोलि शबर डाहू कएला कनइ समुग शृगाली ॥
 मारल भवमत्ता रे ! दशदिसे दऽ देल बली [लि] ।
 हेरि से शबर निवृत्त भेल फाटल शबरालि [गवरत्न] ॥

शून्य, प्रतिशून्य एवं महाशून्यरूप तैसर बाड़ीकेँ चतुर्थशून्यरूप हृदयक छुटारत्तें भिकमोरि कण्ठस्थिता महतीशक्ति, महामुद्रा (गृहिणी) शून्यताशक्ति जाग्रत भए उजाहि देल; वासनादिक वृत्तसभकेँ [जे ओहि शून्यसभमे संलग्न छल, तकरा] उपाहि केवल । हे बालयोगिन ! माया-मोह, विषम हृद्-प्रतिहृद्, त्यागह । देखइ, आइ शबर शून्य (गगन) हृदया-महिला विश्वक्रिकेँ अन्तर्लीन कए शिवरूपमे सामरस्य-सुखक भोग करैत छथि । तैसर बाड़ीकेँ, प्रकाश-प्रतिविम्बसंमिलित महाशून्यकेँ, गगनक समतुल देखि हमर उज्ज्वल सहस्र आत्मज्ञान स्फुटित भेल । महाशून्यक निकटे (केवल) ओहि प्रकाशपुञ्जक अनुसन्धान भेल, अज्ञानाधकार काटि गेल, ई तहिना असंभव छल जेना आकासकुसुम । चित्त परिपक्व भेल, प्रबुद्ध भेल (कङ्कूरिफलसदृश), ओकर आस्वादि कए सशक्ति शबर उन्मत्त छथि, परमानन्दरस-विभर छथि । अनुदिन सामरस्यमे डुबल, विभोर, शबरकेँ अन्व किछु नहि सुमैत छथि । ओहि चञ्चल विषय-आसनामय चित्तकेँ स्थिर कए चतुरानन्दमे निवसित कएल । ताहि दशमे शबर ओहि चित्तकेँ तौलल (ओजन बुझल) आ' पुनः ओकरा दग्ध कए निर्गुणमे सीलि गेलाह, समुग शृगाली विविध अङ्गि [विप्रश्यतो देषो लिखा छथि अनादर देखि] । अरे ! भवमत्त नीच (मायावद्ध) चित्तकेँ मारि, दशहू दिशामे ओकर बलि दए देल आ' आय सबक रहस्यक साक्षात्कार कए शबर स्वयं निर्गुणब्रह्मरूप, परमशिवरूप, भए गेलाह; शबरत्व, जीवात्मत्व आव चल गेल, परमात्मत्व, परमशिवत्व आवि गेल ।

लुइपाद

१ (१)

काया तरुवर पक्क वि शाल ।
 चञ्चल सीध पड़ो काल ॥

दिह^१ करिअ महासुह परिमाण ।
 लुइ भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ॥
 सकल समाहिअ^२ काहि करिअइ ।
 मुख दुखेते^३ निचित मरिअइ ॥
 एहि दउ^४ छान्दक बान्ध करण कपटेर^५ आस ।
 सुनुपास भिति लेहु रे पास ॥
 मनइ लुइ आन्दे भाये दिठा ।
 धमण चमण बेणि दिचिद^६ बइठा ॥

× × ×

काया तरुवर पाँचो डार ।
 चञ्चल चित्त पीसल काल ॥
 लुइ भए महामुख परिमाण ।
 लुइ मनइ गुरु पुच्छिअ जान ॥
 सकल समाधितः की कुत होए ?
 मुख-दुःखसँ निश्चित मृत होए ॥
 एहि एहु छन्दक बन्ध करणकपटक आस ।
 सुन-बल-भिति लेहु रे पास ॥
 मनइ लुइ हमे ध्याने दृष्टा ।
 धमण-चमण दुइ पीड़ी शैठा ॥

शरीर वृक्षवत् अङ्गि, पाँचो ज्ञानेन्द्रिय तकर शाखा-प्रशाखा, जाहि द्वारा चित्त चञ्चल रहला पर विषयवासना ओहिमे प्रवेश कए सैत थछि । मुक्तिक दृष्टिमें तँ विषयवासना फाले थिक । तँ चित्तकेँ स्थिर राखब आवश्यक, तहि-सन ओकर विकास, विनमयत्वप्राप्ति, सम्मथ आ' बिनु चित्तक विनमयताक प्राणशक्तिकेँ शिवमे लीन करब सम्भव नहि, होसर शब्दमे सामरस्य-सुखानु-भूतिक हेतु चित्तक शोधनपर, कुचित्त-विनाशपर, जोर दैत बालयोगिणकेँ गुरुसँ रहस्य-साधना-वदन्ति बुझलाक हेतु आदेश दैत छथि । हुनक कहब अछि जे आन-आन यौगिक प्रक्रियासँ कोनो फल नहि । ताहिसभसँ मुख-दुःखक

१। सेन—दिह २। सेन—तहिअ ३। सेन—एह

४। चणोकी। शरणी, सेन—करणक पाटेर ५। सेन—पादिउ

चक्र बन्द होकर कठिन आ' सपह चक्र तँ मस्तु थिक। एहि चक्रक विनाशे त हुकि थिक। किन्तु एहि चक्रक विनाशक हेतु इष्टियक आहार-विषयसभकेँ, ओहिपर लागल आशा-आकांक्षाकेँ, मनसँ ठेलए पड़त, शून्यस्वरूपिणी, गगनहृदया विधिक सङ्ग, अपरिणामिनी शक्तिक सङ्ग, सादात्म्य आवश्यक, हुनका भित्ति मानि ओहिपर ओहठप आवश्यक। तँ हृदपादक अनुरोध अछि जे ओहि शून्यरूपिणीक भित्तिपर अवलम्बित होव, ओहि भित्तिक सामीप्य बंदाव, अन्तरङ्गता बंदाव। ओ सिद्धाचार्य तँ स्वयं अनुभवशास्त्र छथि, नाडी-योग-साधन द्वारा ओ ई साक्षात् रूपमे देखने छथि जे इडा-पिङ्गला दूनुक मध्यभूता ब्रह्मनाडीमे कुण्डलिनीशक्ति प्राणशक्तिक सङ्ग मोलि ऊपर कोना उठैत छथि तथा ओही सङ्गमभूता सुषुम्ना-नाडीक अन्तरङ्गा ब्रह्मनाडीक द्वारा सिद्धक प्राणवायु महती शक्तिक रूपमे सहस्रारमे आनन्द, अनिर्वचनीय आत्म-शक्ति-यिधुनक आनन्द, दैत अछि। ओषह प्राणशक्तिक सङ्ग, कुण्डलिनीशक्तिक सङ्ग, प्रकाशरूप आत्माक सामरस्य अथवा, संक्षेपमे, शक्तिक सङ्ग शिवक सामरस्य तँ महासुख थिक वा मुक्ति थिक।

२ (२६)

भाव न होइ अभाव ए जाइ।
अइस^१ संघोष^२ को पतिआइ ॥
लुइ भणइ थइ दुर्लक्ष्य विज्ञान।
तिअ धाप विलसइ उह लागे ना ॥
जाहिर प्राणबिहुरूप ए जायो।
सो कइसे आगम वेरें ब्रह्माणी ॥
काहेरें किस भणि मइ दिधि विरिच्छा।
उदकचान्द जिम साथ न भिच्छा ॥
लुइ भणइ मइ भावइ^३ किस।
जा लइ अचक्षम ताहेर उह ए दिस ॥

× × ×

भाव न होइ अभाव न जाइ।
अइसन संघोष^२ के पतिआइ ?

लुइ भणइ थइ दुर्लक्ष्य विज्ञान।
विधातुए^४ विलसइ, ऊह लागे ना ॥
जाहि (केर) वर्ण-चित्ररूप न आनी।
सो कइसे आगमवेरें ब्रह्माणी ॥
ककरा को भनि हम देव परीक्षा ?
उदकचान्द जिमि सत्य न भिच्छा ॥
लुइ भणइ हुन भावो काहि।
जे लए छी ताहि (केर) ऊह न देखि (खी) ॥

परमसत्यक अस्तित्व अलक्षित अछि, कारण अछि विषयवासनाक ओभराहटि। अनस्तित्वो नीक जकाँ मनने सैसैत नहि अछि। एहन ज्ञानकेँ के पतिआएत ? लुइ कहैत छथि—वान्तविक तत्त्वक परिज्ञान वा अभिज्ञान दुष्प्राप्य थिक, साक्षात् रूपमे ओ परमशिवक परमा स्फुरत्ता, महासत्ता, योग्यगम्या नहि। ओ महासत्ता, चिति वा अपरिणामिनी सत्ता वा महती शक्ति अपन कोड़ाक नाथ्यम रखने छथि काय, वाक् तथा चित्त, जकरा एक शब्दमे त्रिधातु वा त्रितत्त्व कहि सकैत हो। कोना व्रीडा करैत छथि, ताहि दिशि ऊह कहाँ होइत अछि ? ओहि कोड़ाक जँ ऊहापोह भए जाए तँ आत्मा वा परमशिवक परिचय अनायास भेटि जाएत। संक्षेपमे, प्रत्यभिज्ञा उपलब्ध भए जाएत। एहि आत्मप्रत्य-भिज्ञाक हेतु छोटछोटीन सूत्रक निर्देश अत्यन्तम्भ। परमा सत्ताक आकार कोनहु वर्ण-चित्रक आकार रहनि, तखन ने कोनहु सूत्रक निर्देश हुनक प्राप्ति भए सकए ? से तँ छनि नहि, तखन, हुनक वर्णन, आगम रहओ वा वेद, कए कोना सकए ? केओ जँ प्रश्न पुछत तँ ओकर हृदयद्वय उत्तर हम दए कोना सकवैक ? अवाक् मनस-गोचरक स्वरूपकेँ शब्दसँ कोना व्यक्त कएल जाए ? यस्तुतः परमात्मा वा वा परमशिव वा परमाशक्ति, जे कहल जाए, अव्याक्येय तत्त्व थिक। अधिकसँ अधिक ओहि प्रकाशक प्रतिबिम्ब मात्र देखल जा सकैत अछि। जेना जलमे चन्द्रक प्रतिबिम्बकेँ सत्यो कहि सकैत छी, यथार्थ चन्द्रक स्वरूप भासित होएवाक कारणेँ, असत्यो कहि सकैत छी, कारण ओ थिक तँ प्रतिबिम्बे, वास्तविक चन्द्र नहि, तहिना एहि जनलकेँ। परमशिवक स्वातन्त्र्य-शक्ति-हिक स्फुरण वा परिणामन थिक ई विश्व, एहि विश्वरूपमे ओ अपनाकेँ आमा-सित करैत छथि, प्रतिबिम्बित करैत छथि, तँ (तन्त्रक अनुसारें) ई जगन्

(११०)

सत्ये धिक, हैं ओहि परसरिय वा परमात्मके विश्वोत्तीर्ण मानलालें तैं विश्व
मिथ्ये वृत्ति पड़त, अधिकत अथिक् प्रतिबिम्बे । तुइ कहैत छधि-तखन हम ई को
करैत छी ? कोन शक्तिमे ओकराएल छी ? ओ सत्य छधि वा मिथ्या ? जनिका
पकड़ने छी तनिक ऊह नहि होइत अछि, की करू किछु कुरैत नहि अछि ।

गुणदरीपाद

१ (३)

तिवड़ा बापी जोइति दे अङ्गवाली ।
कमलकुलिश पाण्डि करहुँ विश्वाली ॥
जोइति तैं विनु खनहिं न जीवनि ।
तो मुह चुम्बी कमलरस पीवनि ॥
खेपहुँ जोइति लेप न जाअ ।
मणिकुले बहिआ ओड़ियाए समाअ ॥
सासु धरें वालि कोआ ताल ।
चान्वसुनवेणि पक्षा फाल ॥
भणइ गुणदरी अन्ह कुन्दुरे वीर ।
नरअ नारी माके उमिल चीर ।

× × ×
विअहुँ^१ बापि योगिनि ! दे अङ्गपाल^२ ।
कमलकुलिश पसि करी बिकाली ॥
योगिनि ! तोहि विनु खनहु न जावी ।
तोरे मुह चुम्बी कमलरस पीवी ॥
खेपहुँ योगिनि लेप न जाए ।
मणिकुले बहि उड़ोवाने समाए ॥
सासु धरे वालि कोँबल कोँचि (लगाए)^३ ताल । ॥
चान-सूर्ज दुइ पक्षा फार (हु) ॥

१ । सेन—धरअ २ । नाहोवय वा विदुजवक अरुआ, योग्य—चणीको (पाठ टि.)

३ । चणीको—सं० झाका

४ । कोचना = कोँचा वा कुँचिआ (उठव्य चणीको—सं० टीका)

भनइ गुणदरी हमे कुन्दुरे^१ वीर ।

नरक नारी (क) माके उद्धृत वीर ॥

हे योगिनि ! सहचरि मानवीशक्ते ! विअहुँ (विवृता) (योगिनि) बापि
अपन कीरने बैसाउ, अथवा, हे महतीकुण्डलिनीशक्ते ! अहाँ नाहोवयकेँ बापि
ओहिपर आरुढ़ भए अपन चिह्नस्वरूपता दान करू । कमल-कुलिश वा भग-
लिङ्गक दर्पण कए अहाँ हमरा बिकाली, कालरहित शक्तिक अभिन्न, बनाउ । हे
योगिनि ! भौरवरूपमे हम अहाँक विनु चलो भदि नहि जीवि सको, अहाँक
मुखक चुम्बन कए, ओकरे मधुरस पीवि, हम जीवि रहल छी । अन्तेपो भेला पर,
योगिनी लिप्ता नहि होवि (स्वाधिष्ठानसँ मूलाधारो गेला पर ओ कुण्डलिनी-
शक्ति गुह्यसत्त्वा रहवे करवि) । ओ शक्ति मणिपूरमे बहैत उड़ीयानपीठमे
बैसि जाइत अछि । हे शक्ते ! अहाँ सासु स्वासकेँ शरीर-गुहमे पायल कए
मणिमूलनिराखै बन्द कए देल । आव चन्द्र-सूर्य (इडा-पिङ्गला) दूतक पक्षकेँ
दूर कए मध्य-विकास कराव । गुणदरीपाद कहैत छधि—हम कुन्दुरयोगमे
(द्वीन्द्रियसंयोगमे) वीर छी, नर-नारी दूतक मध्य उद्धृत वीर छी (जाहिमे
दूर लीन भए जाए, तेहन सत्त्व, परमात्मरूप भए गेल छी) ।

आर्यदेवपाद

१ (३१)

जहि मण इन्द्रिय पवण^१ होइ पठा ।
ए जाननि अथा कहिं गइ पइठा ॥
अकट करुणाइसरलि वाजअ ।
आजदेव निराशे^२ राजअ^३ ॥
बान्दरे चान्दकान्ति जिम पतिभासअ ।
विअ विकरये तहिं दलि पइसअ^४ ॥
छाविअ भय धिए लोआचार ।
चाहन्ते चाहन्ते मुण विश्वार ॥

१ । कुन्दुर योग = समरसंयोग । २ । कुन्दुर योग = द्वीन्द्रिय-संयोग—ता० टी०—
सा० भा० पृ० ३२०

३ । तेग—इन्द्रियपवण (छन्द, अर्थबुद्धाफ रत्ना) २ । सेन—चिराले

३ । चणीको । शारजी, सेन—राजइ (हुकक इन्द्रिय अनुपपुष्क)

४ । चणीको । शक्ती, सेन—पइसइ

आजदेवे^१ सखल विचारि^२ ।
भय विष दूर^३ निवारिउ ॥

×

×

×

जहँ मन इन्द्रिय पवन होइ नश्वर ।
न जानी आत्मा कहँ गइ पइल ॥
अकल कह्यो - डमक बाजए ।
आर्यदेव निराशे^४ राजए ॥
चन्द्रे चन्द्रकान्त जिमि प्रतिभासए ।
चित विकरणे तहँ दूरि [जा] पइलए ॥
छाडि भय घृण [१] लोकाचार ।
देखै देखैत भूत विचार ॥
आर्यदेवे^५ - सकल विचारल ।
भय घृण [१] दूर निवारल ॥

जहण मन-इन्द्रिय-प्राणपवन सब समाप्त भए जाए, ततए आत्मा कतए जा कए पैलल से बुझबाने नहि अवैत अछि । अतुल्य वा अखण्ड करुणामय शिषक डमक बाजि रहल अछि, आर्यदेव आव सकल आशा-आकांक्षासँ बिहीन शोभित भए रहल अछि, विशुद्ध आनन्दमे मग्न अछि, विषय-वासनासँ मुक्त अछि । चन्द्रक सम्पर्कमे जेना चन्द्रकान्तमणि वा चन्द्रिका चकमक लगैत अछि तहिना विकलजाल विशुद्ध चितक सम्पर्कमे शुद्ध प्रकाशरूप धारण कए लैत अछि, चित जखन चितिक रूपमे विकसित होइत अछि तखन ओकर विकारो त्रिविजीत भए तद्रूपे भए जाइत अछि । भय-घृणा-लोकाचार आवि (अपराध)केँ छोड़ला पर शून्यस्वरूपिणीक विनश्य (वा शून्यक विचार)क अनुभव करैत करैत आर्यदेवसँ सब रहस्य विचारल गेल । आव हुनकामे भय-घृणादि नहि रहल, सबक निवारण भए गेल ।

१ । चमीको । शारही, सेन—विचरिउ (अभिन तौलीक दुक बहि बैसए)

२ । चमीको । शारही, सेन—दूर (छन्दोभङ्ग, अशुद्धी भरी)

दारिकपाद

१. (३४)

सुन करण रे^१ अभिनचारें कायवाक्चि^२ ।
विलसइ दारिक गअखत पारिमकुलें ॥
अलखलक्षणचित्ता महासुह^३ ।
विलसइ दारिक गअखत पारिमकुलें ॥
किन्तो मन्ते किन्तो तन्ते किन्तो रे भाणवखाने ।
अपइसनमहासुहलीलें दुलख^४ परमनिवासे ॥
दुखें सुखें एक करिया भुज्जइ इन्दीजानी^५ ।
स्वपरापर न थैयइ दारिक सखलानुसार माथी^६ ॥
राआ राआ राआ रे अवर राज सोहे^७ रे थावा ।
लुइशाअपसारें दारिक द्वादश भुज्जलें लवा ॥

×

×

×

सुन - करण रे । अभिनचारें कायवाक्चितो ।
विलसइ दारिक गअनहि पारिमकुलें ॥
अलखलक्षणचित्ता महासुलें ।
विलसइ दारिक गअनहि पारिमकुलें ॥
की तुअ मन्ते की तुअ तन्ते की तुअ रे । ध्यान-वखाने ।
अपइसन - महासुललीलें दुलख - परमनिवासि ॥
दुःखसुख एक कए भोगइ इन्द्रिय जानि [इन्द्रियधानी] ।
स्वपरापर न देखइ दारिक सकलानुसार मानि ॥
राजा राजा राजा रे । अवर राज सोहे रे । बड [१] ।
लुइशाअपसारें दारिक द्वादश भुज्जने लव [१] ॥

१ । चमीको । शारही, सेन—सुनकरणरि २ । सेन—विष

३ । चमीको । शारही, सेन—दुलख ४ । चमीको, सेन—इन्दी जानी (खी)

५ । चमीको । शारही—अख तानुतरमाथी ६ । चमीको । शारही—सोहेरे

७ । चमीको (बं छाया) —'निषां'

(११४)

अरे ! शून्य-करुणा अर्थात् शक्ति-शिव अभिन्न सत् आचरण करैत कायवाक् चित्तमे विलास करैत छथि, शून्यस्वरूपिणीमे, परम कुल (शक्ति) मे (हमर) अज्ञचलक्षण चित्त सामरस्यसुखसँ लीन अछि । सोरा सन्त्रास की होएतह ? तन्त्रास की होएतह ? ध्यान-व्याख्यानसँ की होएतह ? अत्रविश्व महा-सुखलीलाक सङ्ग दारिकपाद दुर्लभ परम मोक्षमे लीन भए इन्द्रियक असारतासँ परिचित भए, दुःखसुखसँ एक बूझि ओकर भोग कए रहल छथि । समस्त जाग-तिक तत्वकेँ अनुत्तर परमशिवक आभासक रूपमे स्वीकृत कए दारिक आइ स्व-पर-अपर भेदक अतुल्य नहि करैत छथि । अरे ! राजा, राजा, राजा—अन्व राजा (साधक-चक्रवर्ती) सम तँ मोहमे जकड़ले रहि गेलाह, मुदा दारिकपाद शुरुशुद्ध-पादक प्रसादान् द्वादश भुवनपर विजय प्राप्त कएल, ई बड़ संतोषक विषय ।

डोम्बीपाद

१ (१३)

गङ्गा जठना माके रै^१ बहइ नाइ^२ ।
तहिँ बुझली मातङ्गीपोइआ^३ लोले पार करैइ ॥
बाहनु डोम्बी बाइ लो डोम्बी बाइस भइल छज्जारा ।
सद्गुरुपाअपसाएँ^४ जाइथ पुणु निजकरा ॥
पाञ्च केहु आल पड़न्ते साङ्गे पिठल काच्छी बान्धी ।
गञ्जणुखोले^५ सिझहु पाणी न पइसइ साथि ॥
चन्द सृज दुइ भक्ता सिद्धि संहार पुलिन्दा ।
बाम दाहिण दुइ भाग न देखइ बाहनु छन्दा ॥
कसड़ी न लेइ, बोड़ी न लेइ, सुखन्ते पार करइ ।
जो रथे चडिला बाहवा ए जा [न] इ^६ कुले कुल बुझइ ॥

× × ×

गङ्गा यमुना माके रै ! बहइ नाइ ।

तहिँ बुझली मातङ्गी डोमिनि लोले पार करइ ॥

१। चगीको। शास्त्री—माके रै २। चगीको। शास्त्री—नाइ

३। चगीको। शास्त्री—मातङ्गी दोइआ ४। चगीको। शास्त्री—पसाएँ। तेन—पएँ

५। चगीको—गञ्जण बुझोले । तेन—गञ्जण-बुझोले ६। तेन—जायइ

खेवह डोमिनि ! खेवह हे डोमिनि ! बटे भेल उत्पूरा^१ ।

सद्गुरु-पाद-प्रसादे^२ जाइथ पुन जिन पुंपुरा ॥

बाँच कछअरि पड़ैते माने^३ (वा भाकि), पीठे कच्छी बान्धि ।

गङ्गा-सेवनीएँ^४ लोचह^५ । पेइह^६ पाणी, न पइसए सन्धि ॥

चन्द-मूर्छा दुइ भक्ता सिद्धिसंहार-पुलिन्दा^७ ।

बाम दाहिण दुइ भाग न देखइ बाहनु छन्दा ॥

कसड़ी न लेइ, बोड़ी न लेइ, सुखन्ते पार करइ ।

जो रथ चडला (किन्तु) खेवा न जा (न) इ कुले कुल बुझइ ॥

गङ्गा-यमुना (इडा-पिङ्गला) क मध्यमे हे बालयोगिन ! ब्रह्मनाडी (सुषुम्नास्थ सूत्रम नाडी) एक प्राणवाहक नौका चहिरहल अछि । ओहि स्थानमे अन्तस्था महाविद्या-शक्ति वा चाण्डालिनी (मातङ्गी = चाण्डालिनी^१) मातङ्गीरुवा डोमिनी (पोइआ = नीच स्त्री^२) (शरीरक निम्न प्रान्तसँ उठनिहारि शक्ति चण्डाली वा) बुझलिनी अपन लीला देखाए साधकपुत्रसकलकेँ ऊर्ध्व-गामी (पारगामी) बनैत छथि । हे डोमिनि ! महामुद्रे ! प्राणनीकाकेँ, चित्त-नीकाकेँ खेवह, पाठमे आध जीवनक सौंके भेल जाइत अछि, सद्गुरु-परण-प्रसादे पुन जिनपुर (परलोक) जेबाक अछि, पञ्च-उपदेशरूप कर्षणार मार्गमे वा माकिपर रहैत, पीठमे कच्छी (वा रस्सी) बान्धि शून्यरूप सेवनीसँ नौकास्थ जलकेँ उपछि केकह, जाहिसँ श्री जल मध्यनाडी (नाडी-हृदय-सन्धि) मे पैसए नहि (अर्थात् विषयवासना प्राण-नौका वा चित्त-नौका मे अँदकि नहि सकए, से देखइ, अवितहिँ उपछि केकह) । चन्द्र-सूर्य-मण्डल-चक्र दून् सृष्टि-संहारक प्रतीक, ओहि नौकाक मध्यस्थ दुइ गोट मस्तूल (वा सुद्री धिक) ताहि प्रकारे प्राण-वाहमे लीन दुअह जेँ एहि दून् चक्र-सम्बन्धी (इडा-पिङ्गला रूप) दून् मार्ग दिशि ध्यान नहि जा सकह । हे बालयोगिन ! तेहन व्यक्ति, महामुद्रा (ऊपर सम्बोधिता) पार करओनिहारि छथुन्ह जे आनन्दे आनन्द,

१। उत्तर—Evening Twilight-आसँ सँ शं को० P. 103 तथा चगीको पाठ—

२। बुझोले—सेवनी [चगीको—एही गीतक पाठ दि०] ३। चगीको—सं क्षायाने 'उदभव', 'सिच' दून् समानार्थक (उपलब्ध अर्थ मे); जिन=लोचइ [सँ श्व]

४। पुलिन्दा—पुलिन्दा, इन्द्रिय चगीको ओइ गीत पाठ दि० तथा आसँ सँ शब्द-कोश P. 349 'पुलिन्दा' शब्द=मस्तूल । ११। सँ शब्दकोश P. ४३ [सँ बौद्ध 'चण्डाली'] १२। चगीको—ओइ गीत—पाठ दि०

हुनका हेतु एकोटा चौड़ी-चौड़ी पारिवर्त्मिक खर्च नहि करवाक काज। ओ मातङ्गी-
शक्ति सहायिका स्वच्छन्द भए आनन्दसँ पार करैत आएल छथि। एहि प्रकारे
पारंगमन करवाक हेतु जे एहि चित्त-प्राप्त-नौकापर सवार होएताह, किन्तु ओकर
बाइसँ परिचित नहि रहताह, से देह-देहहिमें^१ २ ह्वि जएताह वा (जेना 'कूल'
मानि कहल गेल) इतस्ततः तदहिपर ह्वि जएताह^३ ।

कुम्कुरीपाद

१. (२)

हुलि हुलि पिटा धरण न जाय^१ ।
रखेर लेलसि कुम्भीर खाय ॥
आञ्जन चरपण^२ पुन भो विआली ।
कानेट चोरे तिल अथरासी ॥
सुसुरा निद गेल बहुड़ी जागअ ।
कानेट चोरे तिल का गइल जागअ ॥
दियसह बहुड़ी काइ^३ डरे साथ ।
राति भइले कामरु जाअ ॥
अइसन चन्दी कुम्कुरीपाद^४ गाइइ ।
कोडि मके एकु दिअहि सगाइइ ॥

× × ×

हुली हुलि पीठ धारण न जाए ।
रहक (वृक्षक) तेतरि कुम्भीर खाए ॥
आञ्जन चरपण (गुहापण) पुन हे विआली । प्रसूली ।
कानेट (कर्णमूल) चोरे लेल अथरासी ॥
सुसुरा निद गेल बहुड़ी जागए ।
कानेट चोरे तिल का गति माकए ॥
दियले बहुड़ी काइ [काइ कोआ] क डरे भागए ।
राति भेने कामरु जाए ॥

१। मं- हो- तथा काओर प्रथम्य 'देहेडि' कथित कुल ... लं- वं- पुं- ४३०

२। चणोको पुं- ४६ पं- दि-

३। चणोको । शास्त्रो सेव- जाइ । ४। सेन-प्रसूली ३। चणोको, सेव-आव

अइसन चर्चा कुम्कुरीपाद^१ गाआल ।

कोटि भाके एक हिअहि न समारु ॥

हुली शब्दक दू अर्थ—कुम्कुरी^२ आ वृक्षाकार, लोन होएवाक स्थान 'महा-
भुखकमल'^३ वा सहस्रार, वस्तुतः कच्छपोअहुके धेँट बाहर-भीतरक दृष्टिमें इयकार
कहि सकैत छी। असु। प्रथम पंक्तिक तात्पर्य एतये अछि जे सहस्रारक
अमृत दूहि (दूनुक मध्य सामरस्य स्तपित कए मिथुनामृतज्ञान दूहि) पुनः
ओकरा नशिपीठमे धारण नहि कएल जाए सकैत अछि (कुपडलिनी-उत्थान
द्वारा सामरस्य-भुक्तिक पश्चात् प्रत्यावर्तनक प्रसन्न नहि छैत अछि) । काय-
वृत्तक एक आ^४ अमृत तेतरि सदरा (कु) पित्तकेँ, कुंभीर जन्तु वा कुम्भक
प्राणायाम खा छैत अछि । हे जगत्-प्रसूति महाभुखे ! तुनह, अर्धरात्रिमे
(कुपडलिनी-उत्थान-कालमे) कर्णभरण (कर्ण) द्वारा नाछ नाद-पवन) सामरस्य
चोरा लेलक, ससुर सदरा स्वरितादि श्वास अवरोध (निवृत्त) भए गेल, वधू-
सदरा शोचिनीगण जागलि रहए। जखन कर्णभरण नाद-पवन चोरे लाग लेलक,
तखन पुनः ककरासँ माछव ? दिनमे वधू काइ (काइकोअहु) सँ डेराए जाइत
छथि, राति भेने प्रियतमकेँ कामरु पहुँचवैत छथिन्दा वा कामरुप जाइत अछि
(कामसायनाथ^५) अर्थात् प्राणक आरोहक क्रममे कुपडलिनी-महाभुख कालपुरषसँ
वस्तु रहि, किन्तु सहस्रारस्थ भए पुनः शिव-संयोगमे उन्मुखी होथि। एहन
चर्चा कुम्कुरीपाद गवैत अछि, कोटिमे एकहुक हृदयमे ई रहस्य पैखल नहि ।

२. (२०)

होइ निरासी खमए भवारे^१ ।
सोहोर विगोआ कहए न जाइ ॥
केडलिउ गो माए अन्तवरि चाहि ।
जा एधु चाहाम सो एधु नाहि ॥
पहिल विआण मोर बाखनपूडा ।
नाहि विआरन्ते सेव बाबुडा ॥

१। हुली—कुम्कुरी—वं- शब्दकोश

२। वृक्षाकार पतित लोने गहं महाभुखकमल हुलि इति वृक्षावकेतो बोद्धव्यं ।

३। चणोको मं- डी-

४। चणोको, सेव । शास्त्रो—वलाहि

जाणजीवण मोर भडलेसि पूरा।

मूल निखणि^१ बाय संधारा॥

भणथि कुक्कुरीपा ए भव धिरा।

जो एधु बुनइ सो एधु बीरा॥

× × ×

हम निरातो खमन भतारै।

हमर विशेषता कहल न जाइ॥

काइल ने भाए ! अन्तःपुरी देखि।

जे एत देखी से एत नाहि॥

पहिल बिआन मोर वासनापुर (१)।

नाइ विचारैते शीतो बेवार॥

जान जीवन मोर मेल पूरा।

मूल आवि बाय संधारा॥

भणथि कुक्कुरीपा ई भव बीरा।

जे एत बुनइ से एत बीरा॥

हम (भगवती महामुद्रा) व्यापक परमस्वरूपिणी रह्याक कारणे^१ निरासक्ति छी, शून्यस्वरूप संग वा चित् (चित्तें तैं चित् बनि जाइत अछि) हमर भर्ता, स्वतः हम चिच्छवित वा चिति। हमर वाशयिता के से कहल नहि जाए नी भैया ! हम अन्तःपुर (सभकक चित्त-जगत्) दिशि ताकि ओकर विषय-वासनाके^२ तोड़ि देल। जेना अहाँ एहि अगतके^३ देखैत छी, तेना अछि नहि, अर्थात् असन् अछि वास्तवः एतलन् अछि मूला शक्तिक आभास होएवाक कारणे^४। हमर पहिल बिआनमे वासनाजगरी ई देह प्रसूत भेल, नाइ सभपर विचार कएला तैं वासनाजगरी देही दबनीये। ज्ञान-जीवन वा उदाम जीवन हमर पूर भेल, चितिरूपमे (अक्ष-) मूलमे पैसि ओकरा चिन्हल, वासनादिजनक चित्तक संहार (विनाश) कएल। कुक्कुरीना कहैत छथि— ई जगत् स्थिर अछि, जे ई रहस्य नीक जकीं चुभैत अछि से बीर अछि (जगत् स्थिर, स्थिरा निर्याक आभास होएवाक कारणे^५)।

पहिला महामुद्राक उक्ति अछि वा कविक, से समस्त गीतने सुस्पष्ट नहि अछि। ई अनुसन्धान किछु उपयुक्त प्रतीत होइत अछि जे अन्तिम चारु

१. भगवती । शास्त्री, सेन—नक्षत्रि ।

वर्धित कविक उक्ति अछि, अत्रशिष्ट महामुद्राक। किन्तु, अधिक समीचीन बुझना जाइत अछि ई अनुमान जे समस्त गीत कविक अभिज्ञा प्राणशक्तिक उक्ति थिक, तैं "मूल".....संधारा"। वस्तुतः सिद्धपाद चित्तवक्क संहार कएल, किन्तु हमक अभिज्ञाकएने शक्तिथी तेना दाखि सकैत छथि।

३ (५८)^१

इतिशास्त्रमुद्रा^१ प्रविष्टाः।

समतायोगस्य सैनिकसमूहाः ॥ १ ॥

विषयेन्द्रियजामानहन् ।

शून्यताराजो महासुखनाना ॥ ध्रुवपद ॥

तूर्यशब्दः शङ्खध्वनिर् अग्रतिहततादं नदति ।

मोहभवबलानि दूरातीतानि ॥ २ ॥

सुखपुरं शिखरे संस्थाप्य सर्वम् आकृष्टं [संगृहीतं वा] ।

अंगुलिम् कूर्चं चित्तया कुक्कुरीपादो बधति ॥ ३ ॥

अयं त्रैलोक्ये महामुखेन जयति ।

तत्त्वस्थार्थं शब्दान्तरेण कुक्कुरीपादेन कथितो ॥ ४ ॥

× × ×

कुलिश - कमल - सुख दसल।

समतायोगस्य सैनिक समूह ॥ १ ॥

विषयेन्द्रिय - ज्ञान भावल।

शून्यताराजो महासुखनाना ॥ ध्रुवपद ॥

तूर्य शब्द शङ्खध्वनि अग्रतिहतताद आनए।

मोहभवबल दूर बीतल ॥ २ ॥

सुखपुर शिखरे शक्ति सब आकृष्ट (संगृहीत) (मेल)।

अङ्गुलि उठाए कुक्कुरीपाद कहथि ॥ ३ ॥

एहि त्रैलोक्ये महामुखे जय हो।

तत्त्वक अर्थ शब्दान्तरे कुक्कुरीपादे कथित हो ॥ ४ ॥

१. "The Caryā with its commentary, lost in its original form, has been retranslated here from the Tib. version appended at the end of the work." भगवती—५५ वि० (पृ० ३६७)

वज्र (लिङ्ग वा शिवक प्रतीक) आ' कमल (योनि वा शक्ति प्रतीक) पड़ि वृत्त सारस्वयोगमे समस्त काय, वाक् चित्त तत्पर भए गेल । शिव-शक्तिक सारस्वक बलसँ विषयमाहक इन्द्रियसम्बन्धक व्यापार नष्ट कर देल गेल । भुरीयमाद, वित्तक सङ्गधनि जहाँ, अस्तिहस्वरूपमे सङ्कृत भए रहल अछि । आथ संसारक सावध, मोहमायाक पराक्रम दूर चल गेल, आथ समस्त विषय-वासनासभ सङ्छार (मेहसिखर) पर, आत्मरसक भूमिकामे, अन्दलीत भए गेल, सब वासना ओही चकमे आकृष्ट भए बिलीन भए गेल । आबुर उछाए कुक्कुरीपाद कहैत छवि—त्रैलोक्यक आभास—दोषसभ सारस्वसँ जितल भए गेल । ओ पड़ि आत्मस्वानन्दक जयकार करैत छवि, पड़ि सङ्ग रहलसँ त्रैलोक्यो ओरस्कर । ओ (कुक्कुरीपाद) तत्त्वहिक विषयकेँ दोसर शब्दमे (अपन इङ्गसँ) कहैत छवि ।

मुसुकुपाद

१ (३)

काहेरे धिधि नेल अचछहु कोस ।
वेदि(दि)ल हाक पड़ुअ चौदीस ॥
अपना मासँ हरिणा वैरी ।
खनह न छाड़ख मुसुकु अहेरि (री) ॥
दिन न रहूपइ हरिणा निवइ न पावी ।
हरिणा हरिणीर तिलज न जानी ॥
हरिणी बोलख सुण हरिणा तो ।
ए वण चढ़ाही होहु भावपी ॥
तरंगते' हरिणार सुर न दीसइ ।
मुसुकु भणइ मूढहिअहि न पइसइ ॥
× × ×

काहि विनि मोलि रू कीइल ।
वेइल हाक पड़ुअ चहु दोस ॥
अपना मासँ हरिणा वैरी ।
खनहु न छाड़ए मुसुकु अहेरी । आखेट ॥

गुन न छुवइ हरिणा पितइ न पावी ।
हरिणा हरिणीक निवइ न जानी । आनइ ॥
हरिणी बोधए गुन हरिणा तो ।
ऐ वन छाड़ि होहु आनतो ॥
तरङ्गमे हरिणार सुर न वैसो ।
मुसुकु भणइ मूढ-हिअहि न दीसइ ॥

ककरा (कोन तत्त्वकेँ) पकड़ू, ककरा घुसाक दष्टिसे देखि छोड़ू । किछु नहि दुरैत अछि । हम केवल हुनव छी, वास आत विषय-वासनासँ बेरल छी, बुझिपड़ैत अछि, विषयसभ नृचिमाव भए ओर-ओरसँ बाजि रहल अछि—एकर आत्मा केँ भारह (नष्ट करइ) । हमर चित्त-हरिण अपन हासि, अपनहि मानक लोभमे पड़ि, आधीन वासना-पुत्तिक लोभमे पड़ि, कए रहल अछि, तेँ अपन शत्रु अपने अछि, वासनापुत्तिक लोभमे रहने चित्तक विकास संभव नहि । किन्तु मुसुकुपादक आत्मा ओकर जान नहि छोड़त, ओ ओकर दोष-विनाशपर लागल अछि, महती शक्ति निराकारमहासत्त्वशक्तिरूपमे हरिणीक सहरा छवि । पड़ि हरिणीकेँ अपन प्रियतम सिद्धक चित्तहरिणक व्याकुलता देखल नहि जइत छन्हि, ओ बुझैत छवि जे हमर चित्त-हरिण सामान्य हरिण नहि जे खट-पालक आहार करैत अछि ओ स्थूल जलसँ अपनाकेँ परिवृष्ट कए रखैत अछि, किन्तु ओ हरिण करन परिणत नहि रहैत अछि । ओ शून्यहृदया जगदम्बाक अधिष्ठानसँ अनभिज्ञ अछि, जे ओकरासँ दूर नहि छवि । ई स्थिति देखि ओ शून्यशरकरिणी जगन्मयी ओकरा कहैत छविन्ह-हे साधकक चित्त हरिण ! हे हमर प्रियतम ! सुनह, तँ आथ पड़ि विषयवासनाक जंगल-मादमे अपनाकेँ नहि ओझटावइ, एतएसँ निकलि चलइ, चलइ, हमरा सङ्ग सहस्रारवनमे विचरइ । तावय एतये जे चित्त अपर ऊठि, विकसित भए, चित्तक अभिन्न बनि, शिवरूप बनि जाए । जगदम्बा चित्तरूपा छवि, बिना विकसित भेलापर चित्तक अभिन्न बनि जाइत अछि आ' नरतः साधकक आत्मा, शिवात्माक पड़थी भएत करैत अछि । एहि प्रक्रियाकेँ ध्यानमे राखि चित्त अपरिणामितोशक्ति साधकक मनकेँ अपनाकेँ रमाए, अपन अभिन्न बनाए, सहस्रारस्थ शिवरूपमे परिणत देखल चाहैत छवि ।

अस्तु, ई आशय सिद्धक चित्तकेँ जखन बुझवाक योग्य भए गेलैक तखन ओ वड बेतकेँ विषयसँ भागल आ' महती शक्तिक अभिन्न (आत्मरूप) बनि शिवरूपवाकेँ प्राप्त कएलक । कोसा ? जे रहस्य तेँ मुद्दक हृदयमे पति नहि लखैत अछि, मुसुकुपादक सणइ धारणा छवि ।

२ (२१)

निसि अन्धारी मुसल चारा ।
अभिषेकस्य मुसा करण आहारा ॥
मार रे जोइथा मुसा पवण ।
जेथ तुतश्च अवणगवण ॥
भवविन्दारण मुसा करण राती ।
चञ्चल मुसा कलिअ नारक भाती ॥
काल मुसा उद ए बाण ।
गअरो वडि करण अभिषेक पाण ॥
ताय से मुसा उल्लल पाठवल ।
सद्गुरुबोई करह सो निरवल ॥
जथे मुसापर चार तुतश्च ।
मुसुकु मणअ तवे वाचन फिटअ ॥

× × ×

निसि अन्धारी मुसल चारा ।
अभिषेकस्य मुसा करण आहारा ॥
मार रे ! योगिथा मुसा पवण ।
अहिसे दूटए आवागण ॥
भव-विदारक मुसा खुनए गती ।
चञ्चल मुसा जाए (कथारे) भाती ॥
काल मुसा, गति न वर्ण ।
गगने अति करण अमृतपान ॥
ताय से मुसा उकल-पाकस [चञ्चल] ।
सद्गुरुबोई करह सो निरवल ।
जवे मुसादेर चार दूटए ।
मुसुकु मणअ तवे वाचन दूटए ॥

चित्त-मूल चतुर्थ प्रहरान्तमे, अर्थात् प्राणवायुरूप सूर्यक अस्त भेतापर
[पञ्चयोगक क्रममे] चरैत चरैत सहस्रारस्थ मधुक पान करैत अछि । किन्तु

१. चणीको । शाकी, सेव—वरण अनन्य भाव

एहि योगिक प्रक्रियामे स्वाधित्व नहि, अर्थात् स्थायी रूपमे अमृत-पान करबाक
हेतु, सामरस्य-मुख भोग करवाक हेतु, कुचित्त-विनाश आवरदक । एही
विषयके सिद्धाण चित्त-विनाश शब्दे सूचित कएल अछि । आ' एही दृष्टि
प्रस्तुत सिद्ध कवि बालयोगीश्वरके प्राण-पवन, वा चित्त-मूलके मारण कहैत
अछि । विषयवासनासे मलिन चित्तक विनाशहिसै वा तदभिन्न प्राणक नाशहिसै
सामरस्य-मुखि सम्भव, जन्म-मरणक विच्छेद सम्भव । कवि कहैत अछि—ई
जे विषयानुरक्त चित्त से वसधि पदचक्र-साधन द्वारा इष्टक हेतु सामरस्यक
ईषदभोग करैत अछि, किन्तु सामान्यतया पुनः विषयमे लपटाए अपनहिसै खाधि
कोहैत अछि ; वस्तुतः ओ शिक भव-विदारक, किन्तु लागल रहैत अछि खाधि
कोइबाने, अपन पतनक आवागणे । चञ्चल रहि चित्त-मूल नाशक भाण्डार
विषयवापसनाक भोग करैत अछि, आहार करैत अछि, किन्तु ओए स्थिर भए,
समाधित्व भए, महाकालरूप भए जाइत अछि, जकर कोनो वर्ण-स्वरूप नहि,
ताहि रूपमे तँ ओ शून्यतममे विचरण करैत अछि आ' सामरस्यक अमृतपान
करैत अछि, शक्तिक अन्तर्गत बनि । जा' धरि ई स्थिरता नहि आपल रहैत
अछि ता' धरि ओकर छदपट्टी कहल नहि जाए, ओ मानू उकल-पाकस करैत
अछि । एहि छदपट्टीके कोना दूर कएल जाए, सामरस्यक अमृत पान कोना भेटए,
चिन्त तन्त्रमयीमे लीन भए शिवरूपताके कोना पावए ? एहिसभक व्यावहारिक
रक्षक सद्गुरुबोई ज्ञातक । संक्षेपमे एतवे बुझह [हे बालयोगिन्] जे
जखन एहि चित्त-मूलक संचार [ऊपर उठए, पुनः नीचा खसब] रुकि जएतह,
तखन अमृत वन्दन दूटि जेतह ।

३ (२३)

जइ तुम्हे मुसुकु अहेरि जाइके मारिहसि पकवजणा ।
नलिणीधन पइखन्ते होइसि पकवजणा ॥
जीवन्ते भेला विद्याए मएल रअणि ।
[ग]हण विद्यामोखे मुसुकु पवण पइहहि थि ॥
माआजास पसरि उरे बाँधेलि माआहरिणि ।
सद्गुरुबोई बुनि रे कासु कहिनि ॥

१ । चणीको । शाकी, सेव—विशक्ति । चणीको । शाकी, सेव—दण्ड
२ । चणीको, सेव—उपरि उठे । ३ । चणीको । शाकी—पथेति
४ । चणीको । शाकी, सेव—विशक्ति

× × ×
 जे तो मुसुहु आनेद जएवह, मारिहह पञ्चतना ।
 नलिनीवन पैसै होइहह एकमना ॥
 जीवित मेठा विहान, मुइल रखनी ।
 [अ] हण बिनु नाते मुसुहु पयवग पैसिहह नहि ॥
 बाघजाल पररि उरै बाँवलि मावाहरिणी ।
 सहगुहवाधे वृकल रे । [क] ककर कहिनी ॥

हे मुसुहु ! जे तो कुबिलक आयेदार्थ जइहह ते शब्ददर्शनादि पञ्चतनावा आ तत्त्वार्थकी पञ्च-अनुभूतिक विनाश पहिने कए लिहह, सहस्रारदल-प्रवेशसँ पूर्व एकमना यह आराध्यक अन्तरङ्ग बनि जइहह, तखन कोनो गण । आव गीहरा ज्ञानोदय मर गेलह, अज्ञान-निशा समान भए गेलह । निहत चित्त-सुख प्राप्त कइहार लग अर्थात् कुबिल-विनाश कए ओकर मूलभूत शक्तिक सङ्ग हे मुसुहु ! तँ सहस्रार पैसिहह, प्राणवासुके प्रचक-भेद करैत-करैत सहस्रारो मिलबिहह । संसारक गायजाल पसरल अछि । एहि जालमे ओभरार सामक महामाया-हरिणीकेँ सर्वन्त समित रहिषे हृदयमे रखैत छथि, सङ्ग-कल्पना द्वारा स्वार्थवशान् । सहगुहवदत्त ज्ञानसँ हमरा ई सुखवाक योग्य भए गेल अछि जे कानिक की स्थिति छल । कहवाक अभिप्राय ई जे संसारक विषयवासनाक रूपमे मायाजाल पसरल अछि, चाहिमे नहि कँसि, चिच्छादिक सङ्ग अन्तरङ्गत स्थानत कएल जाए, सहह विक चरम लक्ष्य ।

४ (२७)

अघराति भर कमल विकसित ।
 बलिस ओइणी तसु अङ्ग उल्लसित^१ ॥
 चालिअ ससहर^२ मागे अवधूत ।
 रश्मिहु सहजे कहै^३ ॥
 चालिअ ससहर गड शिवाणे ।
 कमलिति कमल बहइ पगलौ^४ ॥
 विरमानन्द विलक्षण सुख ।
 जो एतु सुनइ तो एतु दुख ॥

१. नाडीके । शाकी, सेन—रहसिउ । २. गरीबी । शक्ती, सेन—पयइर

मुसुहु मणइ नर बुभिक्ष मैलें ।
 सहजानन्द महसुह लौलें ॥

× × ×

अघराति भरि कमल विकसल ।
 बलिस योगिनी तसु अङ्ग उल्लसल ॥
 चालिअ शशधर मागे अवधूती ।
 रतनहु सहजे कहइ (अवधूत) ॥
 चालिअ शशधर गेल निवसि^१ ।
 कमलिति कमल बहइ पगलौ^२ ॥
 विरमानन्द विलक्षण सुख ।
 जे एत (ए) सुनइ ते एत (ए) दुख ॥
 मुसुहु भनइ हम सुखल मैलें ।
 सहजानन्द महसुखलौलें ॥

चतुर्थी प्रहर (चतुर्थी सन्ध्या) मे, अर्थात् प्राणसूर्यक शक्तिमिल भेलापर सहस्रार विकसित भेल (अथवा निशामे जाए सहस्रार विकसित भेल) । योगिनीक सहस्र, महाविशाल सङ्ग आसीयभाव अगओनिहारि देवीक सहस्र, यणीसो नाडी ओहि सहस्रारक अङ्गकेँ उल्लसित कएलक, आनन्दोलुल कएलक । प्राणचन्द्र अवधूती वा सुपुन्ना नाडीमे ऊपर उठए लागल आ सहज वा सामरस्यक अनुभूति-रसक परिचय हमरा कहए लागल, अर्थात् हमरा ओ अनुभव होअए लागल । समुत्थित ई प्राण-चन्द्र वा चित्त-चन्द्र निर्वाणप्राप्त भेल अर्थात् मुक्त भए गेल, कनतिनी अर्थात् कुण्डलिनी वा प्राणशक्ति सहस्रार-कमलमे प्रवेश कएल, प्रकट मगनावी द्वारा । तखनुक आनन्द विलक्षण तथा विशुद्ध सन्धिमाय । जे एतए ई रहस्य सुमए सयह अछि प्रसन्न । हमहुँ तँ जीव (प्राण)-आत्मा (परमात्मा) क मैलक वा शक्ति-शिवक संयोगदिक, सहज सामरस्यदिक, प्रसादान् एहि रहस्यसँ परिचित भेल छी । अर्थात् बिनु ओहि सामरस्यानुभूतिक आनन्दक साक्षात् अनुभव प्राप्त भेने ई संभव नहि अछि (बहिष्ठाम जीवनमुक्तिपर प्रकाश अछि) ।

५. (३८)

करुणा भेद निरन्तर करिआ ।
भावभाव हृदय दलिआ ॥
वहता गवग माभे अदभुता ।
पेख रे भुसुस सहजस्वरुआ ॥
जगु सुनइते तुटइ इन्द्रियाल ।
विह्वलित मन देखे उल्लास ॥
विषय विगुह^१ सइ बुझिअ आनन्दे ।
गमएइ जिमि डजोरि चन्दे ॥
ए पैलीए एत वि सारा^२ ।
जोइ भुसुस भेद अन्धकारा ॥

× × ×

करुणा भेद निरन्तर करइ ।
भावभाव हृदय धलइ ॥
वहति गति माभे अदभुता ।
पेख रे । भुसुस सहजस्वरुआ ॥
जगु सुनइते टूटइ इन्द्रियाल (इन्द्रजाल) ।
निभृत निज मन दिअ उल्लास ॥
विषय विगुह^३ हग बुझी आनन्दे ।
गमने जिमि डजोरि चन्दे ॥
ए पैलीए एते विसारा ।
जोगि भुसुस काइइ अन्धकारा ॥

परमा ललाक भाव वा अभाव, एहन विकल्पकेँ दलित कर, हृदयमे करुणा-भेदक उत्पत्ति भेल अर्थात् शिवक करुणामय स्वरूपक स्फुरण भेल । शून्य-गमनमे अदभुत सहज-स्वरूप-प्रकाशक उदय भेल, एहन प्रतीत भेल । अर्थात् शून्य-स्वरूपिणी शक्तिक सङ्ग सम्मिश्रित शिवक सामरस्यमय स्वरूपक वा विमर्श-सम्मिश्रित-प्रकाशक साक्षात्कार भेल । हे भुसुस ! एहि स्वरूपकेँ

१. जगोको । शास्त्री, सेन—विह्वले । २. जगोको । शास्त्री, सेन—दे ।
३. जगोको । शास्त्री—एत विचारा । सेन—एत विचारा

नीक जगो देखइ, चिन्हइ । ओ तँ एहन प्रकाश अछि जकर वर्णन सुनलसँ इन्द्रजाल वा मायाजाल टूटि जइतइ, आ मन निभृत भए जेतइ, अनायास उल्लसिगी । विषय-वासना आव दुख सत आनन्दरूपमे परिणत भेल अछि, कोना लैत अछि तँ जेना आकाशमे चन्द्रोदय भए गेल हो, चन्द्रमाक इजोरिवा जगो ओहि असीम परमशिवक सहज-प्रकाश चित्त-जगतकेँ व्याप्त करैत अछि । एतेक तँ कहल, मुदा एहि तँ लोक्यक मायाजालमे पड़ि लोक सब किछु विचारि जाइत अछि, किन्तु भुसुस अज्ञान-विमर्शकेँ फाड़ि देल, तत्त्वज्ञानी बनि गेलाह ।

६. (४१)

आइए अगुअना ए जग रे भोतिरेँ सो परिहाइ ।
राजसग देखि जे अगकिइ सँधे कि ताक बोडो खाइ ॥
अकट जोइआ रे मा कर हाथ^१ लोछा ।
आइस^२ सभाव^३ जइ जग बुझसि तुइ वासना^४ तोरा ॥
महमरीचि दन्ध[व]नखरी^५ दासपतिविम्बु जइसा ।
बातावन्ते^६ सो दिइ भइआ अमे पाथर जइसा ॥
बान्धिसुआ जिमि केलि करइ खेलइ बहुविह खेल ।
बालुआतेले^७ ससर सिंगे आकाशकुलिला ॥
रावत भएइ कट भुसुस भएइ कट खखला अइस सहाव ।
जइ तो गूहा अछइसि भान्ती पुच्छनु सवगुअभाव ॥

× × ×

आदि [मे] अज्ञान [१] ई जग रे ! अन्धिए^१ से प्रतिभाति ।
राज-सग देखि जे अगकइ सँधे कि ताक बोडो खाइ ।
अकट बोसिआ रे मा कर हाथ^२ लोछा ।
अइस स्वभाव^३ यदि जग बुझसि तुइ वासना^४ तोरा ॥
महमरीचि दन्ध[व]नखरी^५ दासपतिविम्बु जइसन ।
बातावन्ते^६ से दिइ भेला अमे पाथर जइसन ॥

१. जगोको । शास्त्री, सेन—इभा । २. जगोको, सेन । शास्त्री—अइस
३. जगोको । शास्त्री, सेन—अपणा । ४. जगोको । शास्त्री—अपणवरी

अप्यथा मुक्ता त्रिभिः केशि करह लोहह बहुविह खेला ।

बालुका तेलै शशक त्रिवै आकाश फुलपला ।

राजत भनइ ओह । मुमुक्षु भनइ ओह । सकला अइसन स्वभाव ।

यदि तो मुक्ता छह [ते] आकाश [१] गृहह सदमुद्रपाद ।

हे बालयोगिन ! वस्तुतः आदिने जे अस्तुत्वन्न छल एहन जगतकेँ आन्तिक कारये तो यथार्थ शुभि स्वीकार करैत छह । तौहरा असत्य जगत् सत्य प्रतिभासित होइत छह, भनक कारये । किन्तु शुभह जे रजतुल्य देखि जे बुरे चोकि उठैत छथि तनिक वस्तुतः ओ सत्य काए तँ नहि लैत अछि । मिथ्या धारणा मात्र रहैत अछि जे ओ सत्य आ लेब, तहिना एहि जगतकेँ यथार्थ मामि निरन्तर भोति-हुः खसै व्याकुल रहब भ्रमगात्रक परिणाम थिक । एहि जगतकेँ किछु होबएवाला नहि, एकर बुर की ? ई अकट गरुड कदैत छिन्नह । एहि भयसागरक चार विषय-जलकेँ स्पर्श नहि करह, केवल हाथ [मन] केँ नोनछरासन, त्रिपयी, करध होयतह । ई भयसागर किछु नहि सत्ता रखैत अछि, विश्वद्विक आन्तरालक माया मात्र थिक । एहि रूपमे जँ तो संसारकेँ स्वीकार करबह, तँ जनापाल विषय-वाचना दृष्टि जयतह । ई बुझत जे ई संसार तहिना किछु काजक नहि जेना अहभूमिमे पानि पीवाक इच्छा केवल कठकारके, ई करोलकल्पित सुखदुःखमय संसार तहिना मिथ्या जेना आकाशने गन्धर्वनगरी अखल, अथवा जेना वर्षाके प्रतिबिम्बित वस्तु [वस्तु भासित होइत, किन्तु वस्तु नहि, छाया-प्रतिबिम्ब मात्र] । ई जगत् परमा सत्ताक आभास मात्र, छाया मात्र, वस्तुतः अपनाने ई किछु नहि, इहह आशय । बाल-वर्गमे पड़ल पाभर कहियो स्थिर भेल ? वन्याक पुत्री कहियो जगत् लार खेलाएल ? बालुकेँ कहियो तेल बनल ? लड्डिकाकेँ कहियो सिव उरजलैक ? आकाशमे कहियो कोनो फूल फुलएल ? एहि सभ प्रश्नक उत्तर दकेटा होयत—कहियो नहि । तहिना ई जगत् कहियो यथार्थ तत्त्वक रूपमे उत्पन्न भेल, से नहि । राजत (सिद्ध राजकुमार) ई अद्भुत विषय कदैत छथन्ह, मुमुक्षु ई अद्भुत विषय कदैत छथन्ह जे सभ जातिक विषयकेँ, वस्तुकेँ, एही रूपमे बुझह । तथापि जँ तो सूखे छह तँ कोनहु सदगुरुसँ सत्यक सिखासा करह ।

७ (१३)

सहस्रसहास करिअ ए तेलोए ।

खसमसभावे रे बाणत मुक्ता कोए ।

त्रिम जले पानिआ दलिया भेद न जाय ।

तिम सगरबाणा रे समरसे नखल समाए ।

जसु नाहि आपा तासु परेला काहि ।

आइ अनुअण रे जाममरण भाव नाहि ।

मुमुक्षु भणइ कट राखु भणइ कट संशला एह सहाय ।

जाह ए आथइ रे ए तहि भावाभाव ।

× × ×

सहज पडातह करए रे ! बौद्धिकवे ।

खसम-स्वभावे रे ! वाततः मुक्ता कोए ।

त्रिम जले पानिआ खसि भेद न जाए ।

तिम मनरतना रे ! समरसे गान समाए ।

जसु नाहि आत्ता तसु परक काहि ।

आइ अनुत्पन्ना रे ! जन्मसंरण-भाव नहि ।

मुमुक्षु भनइ इत, राजत भनइ कृत, सकला (इ) एह स्वभाव ।

जाह न आथइ रे ! त तह भावाभाव ।

हे बालयोगिन ! एहि सनस्त त्रैलोक्यमे एक सहजकर, सामरस्यमय शिव-शक्तिक अद्वैतरूप, महान् वृत्त जकाँ पसरल अछि, ओही महान् वृत्तक भिक्षुक फलरूप थिक ई यथार्थ सृष्टि, मायाजाल । ओ आकाशधरा स्वभावे, शून्यता-स्वभाव, गगनहृदयस्वभावे, तँ स्वातन्त्र्य वा विमर्शशक्ति थिक परमात्मा वा परमशिवाई तक एहि शक्तिकेँ, परमात्माक स्वभाव (विमर्शहि स्वभावे) केँ पकड़लासँ मुक्ति भेटब सुनिश्चित, किन्तु दौर्भाग्यवशात् वध थोड़ अवस्थित तत्त्वज्ञानी भए सकलाह, अधिकांश ज्ञानविहीन उपासना वा धार्मिक अन्य चर्चा कए वन्दनमय रहलाह । जेना जलाशयमे एक लोख जल देलासँ व्यापक-व्याप्त जलक भेद नहि अनुभूत हो, तहिना मनोरत्न सामरस्यपूर्ण शून्य-स्वरूप शिव-शक्तिमे सीजि (पैजि) गेलासँ तद्रूप भए जाइत अछि । कहलौ तँ गेल अछि जे साधनक नरमवशाभे चित्ते चिति (चित्त-शक्ति) मे परिणत भए जाइत अछि ।

एहि अवस्थाके प्राप्त करवाक हेतु आत्मविकास आवश्यक, जकरा आत्मबोध नहि, तकरा परतत्त्वबोधे कोना हो ? मुमुक्षु कहैत अछि जे एहि दौलोकक बंधाई स्वभाव दुनहुँ आदिमे अनुत्पन्नता, तखन जन्म भरणादिक सद्भाव कोना ? एहन भासित होएव आनिह मात्र थिक । तें ई निश्चित रूपेँ बुझइ जे जगतक इपर एक त्वभाव थिक, एहि अनुत्पन्नतामे भावाभावक, आवागमनक, प्रश्ने नहि उडैत अछि, शवत मुमुक्षुक इष्ट धारणा अछि ।

(४६)

बाजपाय पाकी पैयसा खाजें आदिउ ।
अदृश बङ्गाले कलेश जुडिउ ॥
आजि मुमुक्षु^१ बङ्गाली भइली ।
थिअ घरिणी चण्डाली लेली ॥
उहिअ^२ पञ्चपाटण^३ इंदिविसआ खुडा ।
ए जानमि थिअ मोर कहिँ गइ पइछा ॥
सोए हथ मोर किम्पि थि थिअ ॥
विअपरिवारे महासुहे थिअ ॥
चउकोटि भण्डार मोर लइया सेस ।
जीवन्ते नइलें नाहि विशेष ॥

× × ×
बज्जनाव पाकि पदुसा-हुममे खेवल ।
अदृश-बङ्गाले कलेश जुडल ॥
आजु मुमुक्षु बङ्गाली भेल ।
निज घरनी चण्डाली लेल ॥
दरब पञ्चपाटन, इन्द्रिय-विषया गूढा ।
न जानी चित्त मोर कत भइ (जा) पइसो ॥
सोम-रूप मोर किछु न रहल ।
निज परिवारे महासुखे रहल ॥
चउकोटि भण्डार मोर लए दोष ।
जीवत नुहने नाहि विशेष ॥

१. चलीको। शास्त्री—मुमु। सेव—मुमुक्षु २। चलीको। शास्त्री—इन्द्रिय। सेव—

इदि को ३। चलीको। शास्त्री—पञ्चपाटन। सेव—पञ्चपाटन

बज्ज शिक्षक प्रतीक थिक आ' पय योनिग । तें, प्रथम पंक्तिक आशय अछि—शिक्षक नीका योनिरूप धारमे खासए खेवए लगलहुँ, अथवा महाशक्ति-केँ, क्षुण्डितनीशक्तिकेँ, सहस्रारस्थ शिवक सङ्ग मिलाए, शिवरूप भए, आत्मा हमर तसमाने, सैधुनसदरी, आत्मन्दातिरेकक, निर्विकल्पक आनन्दक, अनुभव कएलक । शिवशक्ति-अद्वयक उपयुक्त बङ्गालक कारणेँ अनेक दुःख बढल, विषयभोगक कर्मेँ बइ बइ कष्ट सहल । आव कोनो कष्ट नहि । आइ हम युद्ध बङ्गाली (ब—शिव, अङ्गाली—अग्नि, तें शिवक अभिन्न) भए गेल छी । आइ स्थूल साधकक रूपमे हम होनिनि केँ अपन घरनी बनाए नेने छी आ' शिवात्मरूपकेँ परमाशक्तिकेँ कुण्डलिनीक स्वरूपमे अपन अन्तरङ्ग बनाए नेने छी । आइ पञ्चपाटन [पञ्चस्कन्धाश्रित* अष्टद्वार-प्रसकारादिक संवेदना] दाय भए गेल, इन्द्रियविषय-शब्दस्पर्शादि गूढ भए गेल । हमर चित्तपर आव ओहिखभक कोनो प्रभाव नहि, न जाने ओ आइ कतए जाए पिसल अछि (वस्तुतः शून्यस्वरूप शक्तिमे अन्तर्धान अछि किन्तु हुनक आकार कोनो सीमित नहि, जे स्थूल रूपमे ज्ञातव्य भए सकए, तें नहि जानी) । आव हमरा हेतु सीत-रूप किछु मूल्यवान् नहि, दूतूँ एके रङ्ग तटस्थ छी अर्थात् शून्य (सीत) आ' आकार (रूप) दूनुमे कोनहुँ एकमे अधिक आसक्त छी, पहन प्रश्न नहि अछि, शून्य-आकार दूनुक संकल्प-विकल्पक तय भए गेल अछि, केवल प्रकाशानन्दविन्मयक, शाता-शेय-ज्ञानक एकवासताक, बोध भए रहल अछि । एहि असीम सामरस्यक आनन्दक अनुभूति तए अनसुह नहि जाए पड़ल, अपन परिवारहिने भेटि गेल, अपन शक्ति होमिनिक अनुभवहूँ । आव हमर विषयवासनाक चतुष्कल सुधारमे समान अछि, आव हमरा को सलाखोल ? आव जेहने जीवन तेहने मरण (जीवन्मुक्तक अवस्थामे स्वतः आनन्दे आनन्द*) ।

काहु पाइ (कथाचार्य)

१. (७)

आजिहँ काहिहँ वाद हथेला ।
ता देखि काहु विमान भरला ॥

* १। पञ्चस्कन्ध = रूप, वेदना, दंष्ट्रा, प्रसकार आ' विज्ञान—ता० श्री० सा० पा० पृ० १६

काहु कहीं गइ करिय निवास ।
जे मनगोचर हो उवास ॥
से तिमि से तिमि तिमि हो भिना ।
भगइ काहु भय परिच्छिन्ना ॥
जे जे आइला से से गेला ।
अवशागवणे काहु विमन भइला ॥
हेरि से काहु निअहि जिनवर बसइ ।
भगइ काहु भी हिअहि न पइसइ ॥

× × ×

आलिहँ कालिहँ वाट रोवल ।
से गेलि काहु विमन भेल ॥
काहु कत गइ (जा) करव निवाल ।
जे मनगोचर से उदास ॥
से तिमि से तिमि तिमि हो भिना ।
भगइ काहु भय परिच्छिन्ना ॥
जे जे आइला से से गेला ।
आवागमने काहु विमन भेला ॥
हेरि से काहु निअर जिनपुर बसइ ।
भगइ काहु मोहि हिअहि न पइसइ ॥

इहा-पिहला से सुपुन्यास्थ अन्नवाहीगत कुण्डलिनीशक्तिक उद्बर्धनसमये
रोषके, वाक्के, भय गेल अछि, से गेलि हम, काहु पाद, विमन भय गेल हो
अथवा (जेना दीकामे, दीक विधरीत अछि) कुण्डलिनी-शक्तिक विरोधित
होएवाक बाट रुद्ध अछि, कारण हुनक सन्मार्ग अन्नवाहीके दूरे दिशिसँ इहा-
पिहला दबने अछि, से काहु विमन, विरिहदमन । आब काहु कतए जाय
बसताह ? ततए बसताह से अलक्ष्य, अवाङ्मनोगोचर । जे मनोगोचर
जागतिक तत्त्व सेलख उदास जकाँ लगैत अछि, ओहिमे कोना दुइ ? ओ
तोहि, काय-वाक्-चित्त, आ' ई तिमि, स्वर्ग-सर्व-पाताल, भिन्नताक

सूचक थिक, पहन गप्प विश्वक परिच्छिन्न स्वभावक दृष्टिदे अछि । विश्वक
सायाजाल अविद्य वस्तु, जे जवन्त सभ चल गेल । काहु एहि आवागमनसँ
विच्छिन्न अछि । ई आवागमन कोना दुइ ? मुक्तिसे । से मुक्ति-प्रतीक जिनपुर
तँ लगहिमे अछि, केवल हृदयमे पैसए, चित्त-विमल हो, ततए आवश्यक ।

२ (६)

एवकार दइ बाखोइ मोड़िह ।
विविध विद्यापक बान्धव तोड़िह ॥
काहु बिलसव आसवमाता ।
सहजनशिरीषन पइसि निविसा ॥
जिम जिम करिणा करिणिए रिसव ।
तिम तिम तयतामअनल वरिसव ॥
छइगइ सखल सहावे सुख ।
भावभाव बलाग न^३ शुद्ध ॥
दशबलरअण हरिअ दशदिस^४ ।
[अ] विद्याकरिके^५ दन अकिलेसे^६ ॥

× × ×

एवकार दइ खगहा मोड़ल ।
विविध विद्यापक बन्धन तोड़ल ॥
काहु बिलसए आसवमता ।
सहजनशिरीषन पैसि निवृत (१) ॥
जिम जिम करिणा करिणिए रिसए ।
तिमि तिमि तयता मदकल वरिसए ॥
पइसि सकल स्वभावे शुद्ध ।
भावभाव बलाग^३ न दूत (शुद्ध) ॥
दशबलरतन दुरल दखिसे (२) ॥
अविद्याकरिके^५ दन (६) अकिलेसे^६ (६) ॥

‘प्रेम’ मन्त्रद्वयी वा शक्ति-शिवरूपी चन्द्रसूर्यताड़ीक शृङ्खलामके कोणित रूप (मूर्धित कण) हृदयस्थ कण। चाख विविध व्यापक वन्धनसमके तोड़ल। आव काहु नव पीवि जन्मल वा सामरस्य-सुखानुभवके विभोर छथि, ओहि सहजानन्द-सामरस्यरूप, शक्तिरूप, कमलिनी-यन्त्रमे विलास कर रहल छथि। संसारसँ आइ तिष्ठत छथि। जेना जेना चित्तमेन्द्र शून्यस्वरूपिणी महा-शक्तिकरिणीमे रिसिआ रिसिआ सटैत छथि, तेना तेना शिवतक आनन्द-मदबारा बरिखैत छथि। देवासुरप्रभृति पङ्गतिशील जीवजल स्वभावतः छुड़ छथि, केवल मायाक कारणेँ अछुड़। आब हमरा मायाक स्वरूप स्पष्ट भए गेल छथि आ तँ मात्र-अभावक समक्षसँ केशमी भरि स्पष्ट वा लुप्त नहि हो। अविद्या तँ हमर दशवली-रस्त (शिवरक्षण)केँ हरण कए लेने छल। अविद्याक कारणेँ ओ दशहू विधाने छिड़िआ गेल छल। किन्तु आव हम ओहिपर विजय प्राप्त कएने छी। तोहरहुसँ इष्ट अगुरोध छथि जे अविद्या-इधनीकेँ सुलभ रीतिसेँ, लभिक भोगभय साधनसँ दमन करइ। अविद्या-हथिनोसँ काज नहि चलतइ, चित्त-गतकेँ विद्याकरिणीक अन्तरङ्ग बन्धन, सपह आसथ।

३ (१०)

नगरआहिरि रे होम्वि तोहोरि कुडिआ।
छोड़ छोड़ जाइ लो बासनाइया॥
आलो होम्वि तोए लज करिव मो' साङ्ग।
निबिन काहु कानासि जोड़ लांग॥
एक लो पदुमा चौपट्टी पणुड़ी।
तहिँ चहि नाचइ होम्वी वापुड़ी॥
हा लो होम्वि लो पुड़सि सद्भावै॥
आइससि जासि होम्वि काहरि नावै॥
तान्ति किकएअ होम्वि अवरसा चगेडा॥
तोहोर अन्तरे छाहि नटवेडा॥

हु लो होम्वी हाव कपाली।
तोहोर अन्तरे मोए धेरिनि हाइर माली॥
सरवर भाङिअ होम्वी भाअ मोलाथ।
मारमि होम्वि लेनि पराण॥

× × ×

नगर बाहर हे ! होमिनि ! तोहर कुटिआ।
छुड़ छुड़ जाइ से बहनाइया॥
हे रे होमिनि ! तोहि लज करव हण सङ्ग।
निवृण काहु कपाली दोरो मङ्ग॥
एक से पदुमा चौचटि पणुड़ी।
तहि चहि नाचइ होमिनि वापुड़ी॥
हे हे होमिनि ! तोहि पुड़ी सद्भावै॥
आबह जाइ होमिनि ! नकर नावै॥
तहि ब्रेचइ होमिनि ! आवरण (१) बटेरा।
तोहर अन्तरे छाही नटवेडा॥
तो हे होमिनि ! हम कपाली।
तोहर अन्तरे हम गहल हाइक माली॥
सरवर भाङि होमिनि खाए मुगल।
मारी होमिनि लो पराण॥

हे होमिनि ! नगरसँ बाहर तोहर लोपड़ी छह, अथवा हे महाशक्ते ! शरीरक शूल परिधिसेँ बाहर, स्वप्न रूपमे अहाँक वास्तविक सत्ता छथि, कुण्डलितोरूपमे अहाँको नजमादी छथि छुड़ जाइत छथि। हे महापुत्र ! हम अहाँक सङ्ग रतिलीन होएव शिवरूपमे, आइ काहु अष्टपाश-विमुक्त छथि, स्वतः घुण नहि, प्राणालिक रूपमे अचोर छथि, नम्र छथि, विषयवासनसँ अनाहुत छथि। एक ओ नृनाधारकक दश, तकर चौंसठि दल, ताहिपर मान् कुण्डलितोरूपमे महापुत्र होमिनी माता नाच करैत छथि। हे महापुत्र ! अहाँकेँ हम सद्भावै पुड़ैत छी—अहाँ कोन नाथसँ सहस्रारपर बहैत जाइत

५। दश-पारिभाषिक मत—श० क०—पृ० ५११ (‘पल’ स्थ)।

१। लगीली १। लगीली, वेद—म ३। लगीली, वेद—अकर ना

३। सेन—नटवा ४। सेन—नटवा

ह्रीं आ' ओतएँ बहैत अतैत ह्रीं ?' कोनो स्थूल संवादक तत्त्व नहि अहि-
चित्त नात्र माध्यम अहि, सपह आशय । हे होचिनि ! हे महामुद्रे ! अहाँक काल
अहि ओकराहि-वतनक रूपमे मुख्य रूप मायाक तौति बेचव आ आवरणरूप
बहेरा बेचव । अहाँक निकट भेलासँ हम नटपेटा छोड़ि दी, जाहिसँ व्यकरण
लए मायामय विश्वमे नट-शीला करैत छलहुँ । जहाँ होचिनि [असृष्ट्या,
अखण्डगोचरी] ह्रीं । इन कृपाशिल ह्रीं, अहाँक समीप आए हम अस्त्रिमाला धारण
कए नेनें ह्रीं । प्राणशक्ति पशुक शरीरक अन्तरात्मक रूप सरोवरकेँ तोड़ि, ओहिने
पेशि मृणालसदृश ब्रह्मनादिक भोग करैत छथि । आय हम कुण्डलिनोक (नाडीक
मूलभूत व्यापक) सत्त्वकेँ अपनाने मध्यकए आत्मामे मिलाए लेब, सबक
मूलाशक्तिकेँ आत्मकेन्द्रित कए शिवस्वलाभ करब ।

४ (११)

नाडिशक्ति दिदु धरिअ खादे^१ ।
अतहा डमरु वाजइ वीरनादे ॥
काहू कपालो योगी पड़त अचारे ।
बेहनगरी बिहरइ एकाकारे ॥
आलि कालि पयटा नेउर चरणे ।
रवि राणी कुण्डल किउ आभरणे ॥
राम हे प^२ मोह जाइअ छार ।
परम मोक्ष लए मुक्तिहार^३ ॥
मारिअ शाशु नन्द चरे शाशो ।
माअ मारिआ काहु भइल कवालो ॥

× × ×
नाडिशक्ति दइ दरी जाटे ।
अतहा डमरु वाजइ वीरनादे ॥
काहू कपालो योगी पड़त आचारे ।
बेहनगरी बिहरइ एकाकारे ॥

१. योगीको । शाशो—जड़े । तेन—खदे । २. योगीको । साशो—देर । तेन—देश ।

३. योगीको, देश । शाशो—मुक्तिहार ।

आलि कालि पयटा नेउर चरणे ।
रवि-राणि-कुण्डल कएल आभरणे ॥
रामहे पनेहु छेविके छार ।
परम मोक्ष ल [य] ए मुक्तिहार [मुक्तहार] ॥
मारि शाशु नन्द [नन्दरि] चरे वशाओ ।
माए मारि काहु भोल कपाली ॥

ब्रह्मनाडी आदि [पञ्चकनिरूपणक प्रसङ्गमे कहल] नाडीसभक अन्तः-
स्थित समस्त शक्तिकेँ, कुण्डलिनी वा प्राणशक्तिकेँ, चित्तक आवार बनाए, ओहि-
पर ओकठि गतता पड़ि रहल ह्रीं । एहि मननक क्रममे अनाहृत-ध्वनिरूप
वत्सरक निनाद 'ओइ' शीरसँ सुनि रहल ह्रीं । काशालिक काहु योगी आय तेहन
आचारक अनुसरण करैत छथि जाहिमे देहे देशालय थिक । एहि आलवसे,
देवनगरीमे, मानू ओ एकूपने, एक लानमे, समाधिस्थ भए साधरस्थ सुखोपभोग
करैत बिहार कए रहल छथि । ओहि साधनाक क्रममे इडा-विज्जलागत पवनक
सन-सन शब्द, ओहि नाडीसुगन्धस्य ऊर्ध्वसंचारिणी कुण्डलिनोशक्तिक मधुर-
ध्वनि अहि, शरीरस्थ सूक्ष्ममण्डल पत्र चन्द्रमण्डल ओहि महतीशक्तिक तावहुइय
थिक । एहि प्रकारक अनुभूतिक प्रसादान् काहु सांसारिक विषयवासनासभकेँ
दूत कए शय्य बनाए देल । आय जे ओहिसभक अनुभवो होइत छनि तँ
धर्मित, प्रशान्त, शीतल संवेदना नात्रक रूपमे, एहन सब जेना अपन सभस्त
ज्वालकेँ झाड़ि निराभित भए ओ तेवल शरीरमे (भस्म जहाँ) लागल अहि ।
आथ कान्ह बड़ बहुमूल्य हार, मुक्तहार, लाभ रूपमे छथि, ओ थिक परममोक्षहार,
मुक्तिहार । जीवत्मा (स्त्री)क साधु-भगदि जहाँ स्थाल आ' ज्ञानेन्द्रिय-कर्मन्द्रिय-
मुखसाधनसभकेँ तँ काहु दमित कए समाधे कए देल जे सबक मूलभूता मलिन-
सत्त्वप्रधाना मायहुकेँ, समस्त विषयवासनाक जननी मायहुकेँ आइ समाप्त कए
देल, हुनक प्रपञ्चजालसँ अलग भए ओहिजेँ अभिभावित छथि (शुद्ध सत्त्वप्रधाना
सहामायासे लोन भए गेल छथि, स्वतः परम शिवरूप, सच्चिदानन्दरूप बनि गेल छथि) ।

५ (१२)

कहणा 'विहाडि' खेसहुँ नखबल ।
सदगुरुबोहैं जितेल सबबल ॥

फोटक हुआ मावेति रे ठाकुर ।
उपकारिउरसे काहु निशर ॥
पहिने तोड़िया बड़िया मारिउ ॥
गजवरे तोड़िया पाञ्चवना चालिउ ॥
नतिरे ठाकुरक परिनिविता ।
अवरा करिआ भवबल जिता ॥
मनह काहु अन्हे भाग दान देहु ।
चउपहिउ कोठा गुणिया लेहु ॥

× × ×

कहना पीड़ी खेलाइ नयनल ।
तहुगुबोधि जोडल मयबल ॥
काठल हैत, मातु रे ! ठाकुर ।
उपकारिउरसे काहु निशर जिनपुर ॥
पहिने तोड़ि पत्तिआ मारल ।
गजवरे तोड़ि पाञ्चवना चालल ॥
नतिरे (मन्त्री) ठाकुरक परिनिवृत्त ।
अवरा कए मयबल जित (ल) ॥
मनह काहु, हान भल दान दी ।
चौसठि कोठा गुनि लए ली ॥

आइ काहु कसणामय स्वाधिपदानचित्तके ससस्त जामातिक प्रवञ्चक सतरन्जक
वर जकों गानि, ओहि घरसभमे जामातिक अनुभवके नहि राखि, आध्यात्मिक
तत्त्वसभके उपविष्ट कए अपूर्व लोकोत्तर विलास कए रहल छथि, छेदिए जकों
सद्गुरुदत्त ज्ञानले अपन आध्यात्मिक शाक शरीरस्थ तत्त्वसभक द्वारा सांसा-
रिक वासनासभके जीति जगइल प्राप्त कए नेने छथि । आइ इततर छिल
भए गेल, अइत-भावना अङ्कुरित पुष्पिल भेल । रे अधिवासस्त चित्त ! तौ
आइ भातु भए गेलह, तोहर प्रशक्ति समाप्त । उपकारीक इहेरसे तत्तैत तकैत

१। चमीको—निशर २। चमीको—गरादिउ । तेन—तराविहउ

३। चमीको । शास्त्री, तेन—आइ

काहुक भयान क्रकस्मान् पहिपर जाइत छथि जे गहान् स्वर्ग (आनन्दमय
लोकोत्तर जगन्) निकटहिमे छथि । जगत्प्रपञ्च-सतरन्जक जालपर कोना विजय प्राप्त
कएल, तकरा सूचित करवाक हेतु काहु ओकर प्रकिया देलबैत छथि । पदिने
(आठो) प्यादा कइल अर्थात् घृण(शङ्का)वि अडवाश केँ कावल । समाधिस्थ
चित्तगज कील पीठीकेँ दुकार अन्य दाउ (मोड़ आदि) वा ज्ञानेन्द्रिय विषय-
समकेँ कावल । मन्त्री वा सम्प्रशास्त्रीय बुद्धि द्वारा तँ अधिवासस्तचित्तराज स्वयं
गाहु भए गेलाह, अचल भए गेलाह । आय ओहि ककुपमय चित्तहि केँ जखन
मातु कए लेल तखन जगइललामक नपे कोन ? ओ तँ अमावास सिद्ध भए
गेल । काहु कहैत छथि—हे महागुह ! चौसठि दलक पद्म(पत्र) हम अहाँक
सेवामे प्रस्तुत कएने छी, ओ अहाँक निवास-मण्डिर अछि, तयह हमर
अनुदान बुझ ।

६। १३)

निशरण राखी किअ अठकुमारी ।
निज देह कसण सन मेहेरी ॥
तरिया मयबलधि शिख करि माख सुइना ।
मभ बैसी तरङ्ग न^३ सुनिआ ॥
पञ्च तथामत किअ केहुआल ।
थाइअ काक काहिल^४ भावाजल ॥
गन्ध परस रल जइसी तइसी ।
निइ थिहुने सुइना जइसी ॥
विअकएणहार सुइल गाऊ^५ ।
चलिल काह महासुइनाऊ ॥

× × ×

निशरण नावी कते अठकुमारी ।
निज देह कसण सुनैहेली (पहिल) ॥

१। चमीको । शास्त्री—कसणामय हेरी । तेन—कसणामय मेहेरी ।

२। चमीको । शास्त्री—तरङ्ग ३। चमीको । शास्त्री—काहिल

४। चमीको । शास्त्री—सुखमय

१४०)

तीर्थ भवजलधि जिमि करि माया सपना ।

नाम देनी तरङ्ग हम मूनि ॥

पञ्चतन्त्रवद्वत् कथादि ॥

बाह्य काय काङ्क्षित मायाजल ॥

गन्ध-परस-रस जइसन तइसने ॥

निर-विहीने सपना अइसन ॥

चित्तावर्णधार शून्यता-माने (माङ्गिकर) ॥

चलल काङ्क्ष महापुण्य सङ्गे ॥

काय, वाक्, चित्त इन्ह तीनों साधनाक साधन अछि, एहि तीनों शरणाकेँ नौका मानि प्राणशक्तिकेँ उपर खेवप लगलहुँ, एहि नौकाहिक प्रसादान् समस्त अष्ट-कुमारी (बाह्य आदि वा शिवक अष्टमूर्तिक सहचरी अष्टप्रकृति पञ्चसहामूर्ताक चन्द्र-गन्धान) केँ, अपन देहहिमे, लक्षण-शून्यमे वा शिव-शक्तिकेँ (अन्तरङ्ग परम-व्यक्तमे) देखल, अथवा एहि तीनों शरणाकेँ अष्टशक्तिकेँ परिणत कए (साधनाक बलें अष्टशक्तिक अनिष्टकाय, वाक्, चित्तकेँ बनाए), अपन देहकेँ शिवशक्तिकेँ तीन कए देल, एहन अनुभव होअए लागल । तबान् आयाकेँ सपना मानि संसार-सागरकेँ पार कएल । (इन्द्रा-विजया दूतक तरङ्गकेँ रोकि (मध्यस्थ सङ्गम गङ्गा-नादीकेँ अपन प्राण-कुण्डलिनीशक्तिकेँ पूर्ण कए) विरोचन, अतोभ्याधि देवसमूहकेँ कथादि मानि हुनकहि लोकनिक आश्रय धरने काय-नीकाकेँ खेवत, योगसाधनामे लागल लागल काह मायाजासकेँ लक्ष्मी भेलह । गन्ध-परस-रसादि जे सुख-दुःख दिअए, हम इन्ह मानि छी जे ओकर सत्ता निरा-विहीन, ज्ञान-सुदुर्लभ सम्भवती दशा स्वतन्त्रशाले अधिक नहि, अधीन आवास्तविक दिक, अनिष्ट होइत अछि जे यथार्थ शिव । चित्तकेँ कर्णधार मानि (चित्तहिक बलें) काहुपाद सानरस्य-सुख-द्वीप दिशि चललह ।

७ (१८)

लिपि मुखए मइ बाहिअ हेलें ।

होउ सुनेलि महापुण्यलौ ॥

कइसएि हालो होम्बी तोहोरि नामरिआली ।

अन्ते कुलियजण माने कावाली ॥

तँह लो होम्बी सञ्चल विदालि ।

कास ए' कारण ससहर टालि ॥

केहो केहो तोहोरि विरुआ बोलिह ।

विदुजन' लोअ तोरें कणठ न सेलइ ॥

काहो गाइ वु कामचण्डाली ।

होम्बीस' आगलि नाहि बिदयाली ॥

× × ×

तीनू सुवन मोहि बाधित हेलें ।

हम सुतल महापुण्यलौ ॥

कइसनि हे ने कोमिनि ! तोहर भमउपम ।

अन्ते कुलीन जन माने कवाली ॥

तोहें हे कोमिनि ! सकल विदारल ।

कार्य न कारण शशहर टारल ॥

केहो केहो तोहरा विरुआ बोलइ ।

विदुजन लोक तोर कणठ न सेलइ ॥

काहो गावइ, तौं कामचण्डाली ।

होम्बीस' (तः) अगिली नाहि छिनारी ॥

तीनू लोककेँ हम पुच्छ पुच्छ, अबहेलना कइल, आव ओकर कोनो प्रशक्ति नहि हमरापर, ओकर विदम्भना रुकि गेल । जाइ हम सानरस्यसुख-विलासक सङ्ग तुरीयावस्थाक अनुभव करैत समाधिस्थ छी । हे महानुद्वे वा शरीरधारिणी होमिनि ! ई तोहर की भमउपम जे हमरा, काशिककेँ, मध्य-स्थान ईत कुलीन (शरीरलीन) जनकेँ अन्तमे मोहर ईत छहुँह (कापालिक महाशक्तिक मध्यस्थ विन्दुमे आत्माकेँ तीन कए दैत अछि, सपह आशय) । तँ ने कहल जाइत अछि जे तौं प्रपञ्चिनी छह, तँ तौं सबकेँ विलटा दैत छह, कार्य-कारण-सम्बन्धक अभावहुँमे सहजेँ प्रबुद्धचित्तचन्द्रकेँ मुक्त करैत छह । केहो केहो तोरा विरुआ (विरुत रुआ, विना रूपक) कहैत छहुँह, विदुजन

१। जमीको । शरणी—काजया २। बगीको । शरणी—विदुजन

१। बगीको । शरणी—होम्बी २

तीरा कण्ठर्त्तं नहि छोड़ैत छून्त (अथवा कण्ठ नहि सैलैत छून्त) । काहू गवैत छधि—हे महासुरे ! तौ कामचण्डाली, कुण्डलिनी (शक्ति) वा कामेश्वरी महाशक्ति छह । काहूक भारणा तँ इण्ड छन्ति जे एहि डोमिनिक, महा-सुद्राल, आगौ कोनो छिगारि नहि (बड़ पैव छिगारि छधि ओ, एहि अर्थमे जे सकल प्राणीक आत्मभूत शिवक सङ्ग रतिलोलाक हेतु आहुति रहैत छधि) ।

८ (१६)

भवनिष्ठाणि पदह मादला ।
मनपवस्येषि करण्डकशाला^१ ॥
जम् जम् दुन्दुहिसाद उच्छ्रित्वा^२ ।
काहू डोम्बोविवाहे चलिया ॥
डोम्बो विवाहिआ आहारिज जान ।
जम्बुके क्षिप्त आसुतु^३ धाम ॥
अहमिंशि मुरम्पसङ्गे जाअ ।
जोइणिजाले रम्पि पोहाअ ॥
डोम्बोपर सङ्गे जो जोइ रत्तो ।
खण्ड न छाड़ैत सहज उन्मत्तो ॥

× × ×

भवनिष्ठाणि पदह मादला ।
मन-पवन दुइ करण्ड-कशाला ॥
जम् जम् दुन्दुभि शब्द उच्छ्रिता ।
काहू डोम्बो विवाहए चलला ॥
डोम्बो विवाहि आहारल अन्ध ॥
जम्बुके छत अनुत्तर धर्म ॥
अहमिंशि मुक्त-प्रसङ्गे जाए ।
योगिनि-जाले रम्बो पोहाए ॥
डोम्बोकेर सङ्गे जे योगी रक्त ।
खण्ड न छाड़ैत सहज उन्मत्त ॥

भव-वन्दन आ' मोक्ष ई दुइ पदहमदल आध्वन्यक काज कएलाक आ' मनप्रणवपन करण्ड आ' कशाला पायवन्त्रक । भव-वन्दनक डोल-पदङ्ग पिरैत आ' मन-प्राणक अनाहत-शब्द-ध्वनि प्रसरित करैत काहू डोमिनि महा-मुद्राक सङ्ग सामरस्यक हेतु चललाह, बूमि पढ़िह जे शून्यगगन दहराकाशमे जय-जय दुमुलनाव भए रहल छजि । काहू साधना-मार्गपर बढ़ैत बढ़ैत शिवत्व-लाम कए महाशक्तिमे सदाक हेतु संलीन भर गेलाह, आय जन्मक वन्दन हृदि गेल, जम्बुकमे अनुत्तरत्व (परमपद) लाभ भेलन्हि, काइ ओ मुक्त छधि, अहमिंशि सामरस्यमुखोपसोपने दुबल छधि; शास्त्रकथित शून्यहृदया योगिनीक विलास-विच्छिन्निक साक्षात्कार करैत राति चित्तवैत छधि । एहि डोमिनि-महासुद्रामे, चित्तिअपरिणाभिनिशक्तिमे जे योगी शक्ति जाइत छधि (एक बेर), तनिका पुनः ओहि विस्मयीक आनन्दकेँ छोड़ल नहि जाइत छन्हि, ओ सहज-सानरस्यानन्दमे विमोह रहैत छधि ।

८ (१४)^१

यूषमन्द उदयति यदा ।
चित्तराजो विमलो भवति तदा ॥ १ ॥
मोहमलं क्षिप्तं गुरुपदेशेन ।
विपवेन्द्रियं गगनमुपेतं ॥ ४० ॥
क्षसमवीजं यत् खसमं याति ।
आत्मवृत्तस् विधातुषु चित्तमोक्षिच्छायां ॥ २ ॥
यथा उदिते सूर्ये रात्रिर्व्यवसाति ।
(तथा) नवसमुद्रमीन्द्रजो दूरीभवति ॥ ३ ॥
राजहंसी यथा जलं विधिनयति ।
भवं भुंक्ष्य [तथा] इति कथयति कृष्णपादः ॥ ४ ॥
× × ×
पूर्णचन्द्र उदय जव ।
चित्तराज विमल होए तबे ॥

१ । "This gītā with its Sanskrit Commentary lost due to a lacuna in the Ms. is given below in Sanskrit retranslation from Tib. version appended in Roman Transliteration at the end of the work....."

मोहमल विष्व गुह्यवेषे ।
 विषयेन्द्रिय भयनयुक्त ॥ ध्रु० ॥
 क्षममवश जे (ते) क्षमग ओए ।
 आत्मबुद्ध विधातु (मे) पञ्चारण छाया ॥
 जेना जगमे सुखक राति पड़ाए ।
 (तेना) नवसमुद्र मोहधुलि दूर होए ॥
 राखैत जेना अल विभिनाए ।
 मय भोगह (तेना) ई भनधि किलुन (काहू) बाद ॥

पौडशकलायुक्त प्रबुद्ध चित्तवन्त वा प्राणवन्त जखन उदित होइत अछि, उदैत अछि, आ जखन विकसित भए पौडशक अन्तरङ्ग भए जाइत अछि सहस्रारख्य शिवरूपमे, स्वतः तखन चित्तराज बुद्ध सत्, चित्, आनन्दमे परिणत भए जाइत अछि । गुरुवर्देशसँ मोहमल नष्ट भए जाए आ इन्द्रियसभक प्रेरणा आवे शून्यमे अन्तर्लून भए जाए, सभ ओहीमे लागल रहए । विपश्यक शून्यस्थ वीज सेहो व्यापक अण्डक शून्यमे मोलत जाए । आत्मरूप वृक्षक छाया काय, वाक्, चित्तकेँ व्याप्त कएने अछि । जेना सूर्योदय भेलासँ राति [अन्धकारशुन] पड़ा तहिना संसारक अगम्य सारक मोहान्धकारमय विश्व, चिद्वपनप्रकाशसँ दूर पड़ा जाए । राखैत जेना नोरखेँ खोरखेँ कराक करैत अछि तहिना अचिन्ते केँ चिन्तेँ कराक रूपमे देखैत संसारक [आ पुनः सामरस्यक] भोग करै, कृष्णपादक ई कहब ।

१० (३९)

सुख बाहू तथता नहारी ।
 मोहभण्डार लए सञ्जला अहारी ॥
 घुमइ ए जेवइ स्वपरविभागा ।
 सहजनिदाहु काहिला लज्जा ॥
 जेअए न जेअन भर निद्र गेला ।
 लज्जल सुफल करि सुखे सुतेला ॥
 स्वपणे मइ देखिल विबुधस सुण ।
 खोरिअ अवगामन विबुध ॥

शाखि करिब जालन्धरिदाए ।
 पाछि ए चाहइ मोरि पाखिआचाए ॥

× × ×
 लून-बाहू लथता प्रहारी ।
 मोहभण्डार लए लकल (१) अहारी ॥
 घुमइ ए जेवइ स्वपरविभागा ।
 सहज-निदाहु काहिला लज्जा ॥
 जेअए न जेअन भर निद्र गेला ।
 लज्जल सुफल करि सुखे सुतेला ॥
 स्वपणे मोहि देखल विबुधस सुन ।
 खोरि आवागमन विहीन ॥
 शाखि करब जालन्धरपादे ।
 पक्षी न देखइ मोर पणिकताचार्ये ॥

शून्यमायाक प्रभाइकेँ शिवता-धर्मसँ, विमर्शसँ, प्रहार कर काहू समम मोहभण्डारकेँ लए कए खा गेलाह । आइ कान्ह तुरीयानन्दमे विभ्रान्त छथि, स्व-परक भेद देखितहि नहि छथि । सामरस्यमे बुझ समाधित्व रहैत छथि, मायाक आवरणसँ मुक्त [तल] रहैत छथि, आब जैतन्यक अवस्थामे छथि, कोनो वेदना नहि, गाढ़ तुरीयमे आनमग्न छथि । प्रतीत होइत छन्हि जे आइ सभ साधना सुफल भेल आ सुखसँ महाशक्तिमे बुझल सुतल छथि, स्वप्नहुमे जे देखैत छथि तेँ शून्यमे शून्यस्वरूपे विश्व, विषयवाधना स्वप्नहुमे नहि सतवैत छन्हि । आव आवागमन-प्रक्रिया वस्तुकेँ छोड़ि देल, ओ निरसन नहि रहल, पमि गेल, ओहि अन्धमसँ विहीन भए गेल छथि । एहि अवस्थाकेँ जकरा कुन्नाखोल आए ? केवल जालन्धरपादकेँ छावी मानल जाए, जे सुगैत छथि, अन्व परिहृताचार्ये तेँ एहि मार्गक पक्षपाती नहि प्रतीत होइत छथि ।

११ (४०)

जो मएनीअर आलाजाला ।
 आनम पोधी इधामाला ॥

भय कइसें सहज बोलीवाँ जाय ।
 काय वाक् विषय जसु ए समाय ॥
 आले गुरु उपदेश सीख ।
 वाक्पथातीत कहिय कोस ॥
 जेत ई बोली सैत वि डाल ॥
 गुरु शीव से सीखा काल ॥
 भयइ काहु जियरअण बि कइसा ॥
 कालेँ शीव संबोधिह जइसा ॥

× × ×

जे ममगोचर बाला-जाला (इन्द्रजाला) ।
 आगम-पोथी इष्टाभाला ॥
 मन कइसे सहज बोलक जाए ।
 काय वाक् चित जसु न समाय ॥
 अल गुरु उपदेशइ सीख (विषय) ।
 वाक्पथातीत कहिय कोहि ॥
 जते ई बोली तते डाल मटोल ।
 गुरु शीव से शिष्य कहिर ॥
 मनइ काहु जियरअण कइसन ।
 बहिर शीव संबोधित जइसन ॥

जे किछु ममगोचर लक्ष्यसभ अछि, सभ मावाक इन्द्रजाल मात्र थिक, असक् थिक, तेँ आगमशास्त्रद्विक सिद्धान्तसभ, देवी-देवतासभक विमर्शसभ, इष्टदेवीक उपमाला आदि सभ इन्द्रजाले थिक (चित्त-शोधन-विकासक साधन भाव थिक, अन्तिम स्वरूप कहि) सहज सामरस्यानन्दकेँ राधद द्वारा व्यक्त कोना कएल जाए ? कारण, ओहिमे तेँ शरीरक, वाक् तत्त्वक वा चित्तक प्रवेशे नहि भए सकैत अछि [अवाङ्मयममगोचर ओ परम तत्त्व शिव-शक्ति तरव थिक] । एवं

१। जमीको। शास्त्री-पोथी वा २। जमीको। शास्त्री, सेव-जे सह

३। जमीको। शास्त्री-ते न विडाल

४। जमीको। शास्त्री-निकषह स

कोनो गुरु शिष्यकेँ उपदेश द्वारा हृदयक्षम करवाक प्रयास करैत छथि, वाक् माध्यमकेँ उत्तर, अतीत परम तत्त्व ककरा कहल जाए ? जे किछु कहल जाइत अछि से सभ प्रश्नसभक समाधानक क्रममे दाहमगोच करय मात्र थिक, उपयुक्त उत्तर अनुभवमात्रिकगम्य थिक । गुरु जखन ओहि परम सत्ताक वास्तविक परिचय दैत छथि तखन हुनका सूके वनए पहुँच कहि (उत्तरमे 'नेति नेति' कहए पहुँच कहि, परिणाममे चुन), शिष्य जेँ सत् शिष्य रहैत छथि तेँ कथिन राधदसभकेँ अनुसुनी कए केवल सारक अनुभवमे डूबि जाइत छथि । कान्हक धारणा तेँ इष्ट छैनिह जे ओ रमैरसन (परमसुखक अवस्था) कहल थिक से कहल तहिना संभव आ' प्रमाणशाली जेना सङ्केतमात्र द्वारा, चौकक द्वारा, बहिर केँ बुझाओल जाएव ।

१२ (४२)

विषय सहजे शून्य संपुञ्जा ।
 कायविषयोँ मा होहि विपन्ना ॥
 भय कइसे काहु माहि ।
 करइ अनुदिनैँ नैलोप प्रगाइ ॥
 मुदा चित नाउ देखि काअर ।
 भात तरङ्ग कि सोपइ साअर ॥
 मुदा अखण्ते लोअ न पेखइ ।
 रूप भाकेँ शङ्क अखण्ते न देखइ ॥
 भय जाइ ए आबइ पथ कोइ ।
 अइसेँ भावे विलसइ काहिल जेइ ॥

× × ×

चित सहजे शून्य संपुञ्जा ।
 काहु विषयेँ न हो विपन्ना ॥
 मन लइसे काहु माहि ।
 करइ अनुदिन नैलोपे प्रगावि ॥

१। जमीको। शास्त्री-अनुदिन । २। जमीको। शास्त्री, सेव-आइव ।

मूढ़ (१) दृष्ट दृष्ट देखि कातर ।
भग तरङ्ग की लोखइ सागर ।
मूढ़ अछैते लोक न देखइ ।
दूध भाके नेनु अछैते न देखइ ॥
भव जाइ न आवइ (न) एत कहइ ।
अहसन भाये विलसइ कान्हिल योगि ॥

आप काह सहजावस्थाने शून्यस्वरूपिणी महाशक्तिमे दूधल छथि, पूरा बनि गेल छथि, मुक्त छथि, चित्तक विषयी व्यापारक दृष्टिमें भरिप गेल छथि (प्राण रहितहुँ जीवनमुक्त छथि), आप काह व्यक्तीरूपमे (विषयासक्तिरूपमे) नहि भेटताइ, हुनक विषय अद्भुत होइत, किन्तु विषय नहि कर, ई किन्तु बजैत छी जे काह नहि छथि, काह छथि (हँ, जीवनमुक्त छथि) ओ तँ अनुविन जेलीक्यक प्रमाता शिवरूप धनि चिद्रूपमे स्फुरित होइत छथि, सफल होइत छथि, मूढ़ व्यक्ति सकल दृष्ट वस्तुकेँ नष्ट होइत देखि कातर भए जाइत अछि, ई नहि समैत अछि जे एक तरङ्ग भग्न मोलार्से को सागर सुखा जाएत ? मूढ़, अछैते लोक (सूक्ष्म लोक) ओकरा देखैत नहि अछि, दूधमे तक्खन अछैते ओकरा देखैत नहि अछि (अर्थात् समस्त पदार्थक सारभूत शक्तिकेँ, ओकर निकट रहितहुँ, ओकर अस्तित्व रहितहुँ, चिन्हैत नहि अछि) । भवसँ केओ जाइत नहि अछि आ' जे केओ एतय अवैत अछि (केवल नायाक कारणेँ जन्म-मृत्युक सीमाधीन होइत अछि), एहन भावसँ काहुयोगी सामरस्य-सुख-विलास करैत छथि (ओ आइ नित्या परमा सत्तासँ परिचित छथि आ' ओहि सत्ताक आभास मात्राकेँ भानैत छथि, हँ जन्म-मृत्यु वस्तु निरर्थक बुझि पड़ैत छनि, आत्माक अविनाशित्व रहवाक कारणेँ ओकर अप्पा-जेदाक प्रश्न उदात्त अनुचित) ।

(१४५)

मए तर पान्व इन्द्र तनु साहा ।
आशा बहल पात फलवाहा ॥
वरगुरुवचनकुठारेँ ब्रिजअ ।
काइ भणइ तर पुण न उड़नअ ॥

बावइ सो तर सुभासुम पाणी ।
छेवइ विदुजन गुरु परिभाणी ॥
तो तर छेव नैक न जाणइ ।
संझि पहिआँ रे मूढ़ ता भव भाणइ ॥
सुण तरवर गधण कुठार ।
छेवइ सो तर मूल न डार ॥

× × ×

मन तर पांच इन्द्रिय तनु साहा ।
आशा बहल पात फलवाहा (क) ॥
वरगुरुवचनकुठारेँ छेवइ ।
कान्ह भनइ तर पुनि नहि उपजए ॥
बावइ सो तर सुभासुम पानी ।
छेवइ विदुजन गुरु - प्रभाणी ॥
जे तर छेव (ए), भेयो न जानइ ।
संझि पड़ए रे मूढ़ ता' भव भाणइ ॥
सुन तरवर गगत कुठार ।
छेवइ से तर मूल, न डार (रि) ॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रिय मनरूपी वृत्तक पाँच डारि भिक, ओहि शाखासभमे आशाक पातसभ लटकल रहैत अछि जे सभ फलवाहक मानल जाइत अछि । मोह (मोहक कारणेँ) लोक शब्दस्पर्शादिगत सुखानुभवक प्राप्तिमे आशाकेँ लगबाने रहैत अछि, सद्वचन आशा करैत अछि जे अमुक फल भेटत एवमादि । आशामे घुरिआएल रहि लोक संशयसँ दूर भए जाइत अछि, तँ परम-सत्यक अनुसंधानक हेतु ओहि आशाक मूल मनोवृत्तिकेँ कटइ, जेकर गुरु-वचन-कुठारसँ से कए सकबइ । ओ गद्य सुभासुम (-उत्पादक पुण्य-पाप)क जलसिञ्जनसँ बढैत अछि, सुभासुमकर्मसँ चित्तक विषय-वासना बढैत जाइत अछि, गुरुप्रमाणसँ विदुजन रहि वासनातुरकत चित्तवृत्तिकेँ कटैत छथि ।

ये व्यक्ति एहि वृत्तक छेद-भेद करए नहि जनैत छथि से ता' भरि जगज्जालमे विश्वास करैत सड़ि जाइत छथि । सुतरा' अविद्यारूप, मायाकाय ओहि शून्य-तहकेँ विद्यारूप (विमर्शरूप) गगन-कुठारसँ काटह, शून्य-मायाक आवरण-क्षिप्परूप वृत्तकेँ महाभायक शून्याहन्ताविमर्श-कुठारसँ काटह, जहिसँ काटह, केवल शाखासभकेँ नहि काटह ।

विरवापाद

१ (३)

एक से शुण्डितो दुइ चरे सान्धवा ।
बीजण बाकलअ वाहणी सान्धवा ॥
सहजे थिर करि वाहणी सान्धवा ।
जेँ अजरामर होइ दिइ कान्धवा ॥
दशमि दुआरिणें चित्त देखिआ १ ।
आइल गराहक अपरो बहिआ ॥
चउराटि पड़िये देल पसार ॥
पहटेस गराहक नाहि निजारा ॥
एक से चइली ३ सरह नाल ।
भयान्ति विरवा थिर करि बाल ॥

× × ×

एक से शुण्डितो दुइ चर मिलवए ।
चिककन बाकलें वाहणी बान्हए ॥
सहजे थिर करि वाहणी मिलवह ।
जेँ अजरामर होइ बीड़ काह (सान्धवा) ॥
दशमि दुआरिणें चित्त देखिकें ॥
आएल प्राहक अपने बहिकें ॥

जो'सठि बड़िणें देल पसार ।

पहसल प्राहक नाहि निजारा ॥

एक से चइली, सूख नाल ।

भयान्ति विरवा थिर करि बाल (ह) ॥

एक ओ शुण्डितो, शौचहीशक्ति वा कुपडलितो-शक्ति दुइ चरकेँ वा सूर्य-बन्द नाडी केँ मिलवैत अक्षि, विवाह द्वारा वा सुपुन्नामे कठि; चिकन धरज-ब्रह्मानाडी (सुपुन्नास्था) वा गुरुपदेशसँ वाहणी (सहकारस्थ मधु) केँ बन्दैत अक्षि । सहजभाष वा सामरस्य-भावकेँ स्थिर रूप ओहि चित्तकेँ परमशिवलीन करह । किएक ? ओहिसँ तँ अजर-अमर भए जपबह, दृढस्कन्ध भए जपबह । हे कान्हक आत्मन् ! दशम दुआरिणें [वैरोचनहारसँ (सं० टी०) वा दशम इष्टिप्रसन्नपथचिह्नहारें] २ महाराग-मुख-चिह्न देखि ओ प्राहक (कामसन्ध) बाहर आएल आ' अपनेकेँ दिवाराज प्रसरित रखलक, ओहि सान्धस्य-मुख (वा स्त्री-विह) से प्रविष्ट भए पुनः निःसृत नहि भेल । ओ से पूर्णतः तत्त्वज्ञानकेँ पटिल केनिहारि नाडी, तकर नाक सूक्ष्म (ज्ञानस्य) । विरवापाद कहि—ओहि चित्त वा प्राहकेँ निस्तरङ्ग रूपसे, प्रशान्तरूपमे चलाबह । (एहिठाम त्रैलोक्य प्रतीक अक्षि) ।

महीधरपाद

१ (१६)

तिजिणें पादें जामेलि रे अणह कसय धण गावह ।

ता सुनि सार भयङ्कर रे विसअमण्डल सखल भाजह ॥

मातेल चीअनण्डा बावह ।

निरन्तर गज्जणन्त तुसेँ बोलइ ॥

दाप पुण्य वेणि तोड़िअ निकल मोड़िअ कम्भाठाया ।

गज्जणटाकलि लागि रे चित्त पहठ निवाया ॥

महारसपाने मातेस रे तिहुआन सपल उएखी ।
पञ्चविंशतनायक रे विपल कोयि न देखी ॥
खररविक्किरणसन्तापे रे गञ्जणाङ्गण गइ पइडा ।
भगन्ति बहिषा मइ एखु बुझन्ते किमि न दिडा ॥

×

×

×

हीनिपे पाटे लागल रे ! अनहद-हर्षण घन रजई ।
से गुनि भार भयङ्कर रे ! विषय-मण्डल सकल भयङ्कर ॥

मातल चित्त-गजेन्द्रा धावइ ।

निरन्तर गगनांत दुधे खोरइ ॥

पाप पुण्य दुइ तीहि सकइ मोहि समनायना (स्थाना) ।
गगन अनहद लागि रे ! चित्त दहस (ल) निर्वाण ॥
महारसपाने मातल रे ! त्रिभुवन सकल उपेखि ।
पञ्चविंशतनायक रे ! विपल काहु मे देखि ॥
खर रवि-किरण-सन्तापे रे ! गगनाङ्गण गइ (जा) जेता ।
भनधि महिमा मोहि हुगीते किमि (किछु) न लया ॥

काय-वाक्-चित्त एहि तीन्ही पट्टमे लागल अनाहत धनचोर गर्जन करैत
अछि, से सून भयङ्कर विषय-वासनादिहप नार (कान) टूटि जाइत अछि ।
महीधरवादक चित्त-गजेन्द्र ज्ञानासवप्रभात भए दौड़ैत अछि, उपर उठैत अछि,
सहस्रारस्य शून्य-गगनकेँ सकल विकल्परूप चोकइक सङ्ग बुझवैत (वा विकल्प
चोरित)^१ अछि अर्थात् शून्यगगनरूप जीतने सकल विकल्पकेँ चोरैत अछि ।
पाप-पुण्य दुनू तीहुकेँ तीहि, अधिशास्त्रम्भकेँ मोहि (गमोहि) शून्यगगनक
अनाहतध्वनि (टाकलि)^२ मे लीन भए चित्त लुकिमे, सामरस्य-समाधिमे, पिस
जैत । ओहि समाधिक सुखसँ उन्मत्त पञ्चविंश (शब्दस्वशीघ्रिक अरुम्भ)^३
विजेता चित्त सकल त्रिभुवनक (भौतिक) उपेक्षा करैत अछि जा^४ आन ओकरा

१. तेन—पक्ष विपक्षे नायक । २. चगीको — विषय । ३. चगीको । शास्त्री—देखि

४. सैबिलोक 'चोरय' (एहिछाप चोकइक पक्ष धोरन) अन्त रहितहुँ चगीको (एहि मोक्षक
क-दि-हँ 'दुख' तँ 'दूर' अर्थ भेल ।

५. तुलसीय आध्यात्मिक 'टाकलि' शब्द 'a clicking noise'—चगीको (क-दि-हँ) अर्थ अर्थ

हेतु विपक्षताक, प्रतिकूलताक, कोनो धरने नहि अछि । सम्भकेँ अनुकूल देखैत
अछि । आन ओ चित्त कुण्डलिनी-योगक द्वारा सामरस्यक प्रखर ज्ञानरवि-
किरणक आशोक पाथि शून्य गगनाङ्गणमे जा^५ जैतल । महीधर करैत छथि,
आन ओहि शून्यमे, चिन्मयीमे, सुबल हम किछु नहि देखैत छी ।

भादेपाद

१ (३५)

एत काल होव अच्छिनी स्वमोहे ।
एहे मइ बुझल सद्गुरुमोहे ॥
एहे चित्तराज मोह^१ एख ।
गञ्जणसमुदे टलिआ पइल ॥
पेखमि दइ दिह सखई शून्य ।
चित्त विहोने पाप न पुन ॥
बाहुले दिल मो लइल भणिया ।
मइ आहारल गञ्जण पलिया ॥
भादे मणइ अगामे लइल^२ ।
चित्तराज गइ अहार कइल ॥

×

×

×

एत काल हम छली स्वमोहे ।
अवे हम बुझल सद्गुरुमोहे ।
अवे चित्तराज मोर नष्ट [१] ।
गगन-समुदे टलि [जा] पैल [१] ॥
पेखी दइ दिश सबइ शून्य ।
चित्त-विहोने पाप न दुष ॥
बुझल देल मोहे लइल भणि ।
मोने आहारल गगने पलि ॥
भादे भनइ अगामे लेला ।
चित्तराज मोहि आहार कइल ॥

१. चगीको । शास्त्री, तेन—नहुँ । २. चगीको । शास्त्री, तेन—लइल

(१५४)

एतेक काल हम मोड़क सङ्ग छलहुँ, आव हमरा सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानसँ
सुभवामे आयि गेल । आव हमर कुचित नष्ट भए गेल, शून्यगगनमे ठरि कए
चल गेल, वैसि गेल । आव सब दिशि शून्ये शून्य प्रसीत होइत अछि । आव
चित्तक व्यापार शक्ति गेल, वासना-नष्ट भए गेल, स्वयं पाप-पुण्यक प्रसे नहि
अछि । वज्रकुल वा कील सम्बन्ध हमरा लक्ष्य सुभाष देलक, विपयसभकेँ छोड़ि
हम सहस्रारस्थ शून्यमे वैसि अमृत आहार (भोग) कएल । भावेपाद कहैत
छथि—आव हम अविभाज्य परमात्माकेँ आत्मसात् कए लेने छी, आव हम
चिन्तराजहिकेँ आत्मस्थ कए लेने छी ।

आमपाद

(१५७)

कमल कुलिश मागेँ भइल मिअली ।
सम्भताजोरेँ जलिल^१ चण्डाली ॥
दाह डोम्बोचरे लागेल आगि [सी]^२ ।
सखहर लइ सिद्धहुँ पाणी ॥
न उ खरजाला धूस^३ न दिहइ ।
मेरुशिखर लइ गणरा पइसइ ॥
दाहइ हरि हर बाझ भइ ।
फीठा हइ नवगुण सासन पड़ा ॥
भइइ धाम कुड़ लेहु रे जाकी ।
पञ्च नालेँ उठे गेल पाणी ॥

× × ×

कमल कुलिश माने भए मिलली ।
सम्भताजोरेँ (प) जरल चण्डाली ॥

१. गयीक । शरबी, सेत—जालेश २. चयीको । आहरी, सेत—आगि

३. गयीको । शरबी—धुन

दाह डोम्बोचरे लागेल आगि (सी) ।

सखहर लइ (ए) सीचह पानी ॥

न उ खरजाला धूस न दिहइ (१) ॥

मेरुशिखर लइ (ए) गणरा पइसइ ॥

दाहइ हरि-हर बाझ (आझ) भइ ।

फीठा हइ नवगुण सासन पड़ा ॥

भइइ धाम कुड़ लेहु रे जाकी (नि) ।

पञ्चनालेँ उठि गेल पानी (नि) ॥

कमल कुलिशसँ तन्मध्यमे संयुक्त भेल अर्थात् शरीरस्था शक्ति शिवक
मध्यविन्दुमे (ताहि परमतत्त्वक सङ्ग) संयुक्त भेलहुँ (कमल यौनिक प्रतीक आ'
कुलिश लिङ्गक प्रतीक, योनि लिङ्गक मध्य भागमे संयुक्त भेल, किन्तु योनि-लिङ्ग
कुण्डलिनी-स्वयम्भूतिङ्ग अर्थात् शक्तिशिवक स्थूल सङ्केत मात्र अछि) । एहि
(कुण्डलिनी-) योग द्वारा चर्यालीक, अर्थात् कुण्डलिनीशक्तिक तेजोमय शरीर
जागत भए गेल । हुनक निवास, अन्तःस्थ अङ्गुष्ठज्वाण मात्र पाञ्चभौतिक शरीर,
ओहि (कुण्डलिनीक) तेजसँ चिन्तित भए गेल, वासनादिक दृष्टिहँ । ओकर प्रखर
आज्ञा शान्त कोना भेल ? शरीरस्थ चन्द्रमयङ्गलक शीतल अमृतसँ । आव ओ
आज्ञा प्रखर नहि रहल, कालिन्ध विकारक लेश धूमो नहि तबनगोचर रहल—
मेरुशिखरक आश्रित भएकेँ ओ प्राणशक्ति शून्यगगनमे प्रविष्ट भए गेलहुँ (आ'
पुनः गगनस्वरूप मेहाशवितस्वरूप धारण कए लेलहुँ) । आव तँ ओहि शक्तिक
तेजसँ हरि-हर-ब्रह्मा, सब विमह्वान देवतागण (वा भूवशुकविष्णुब्रह्मा),
दत्त भए गेल छथि [भेदभाव जाइत रहल, एक मात्र तत्त्व वैचि गेल परमशिव
(शिव-शक्ति, परस्परशक्तिष्ठ आ' परस्परभिन्न)] नवपवनरूप नवगुणक एवं
इन्द्रियशासनक पट्ट काटि गेल । आम कहैत छथि—हे योगिन् ! स्फुट (रूपमे)
मानि लेख, उक्त पाँचो तत्त्व वा व्यक्तित्व, हरिहरब्रह्मा (वा भूवशुकविष्णुब्रह्मा),
एवन आ' इन्द्रिय पाँच नाल (नहरि, द्वारा)क काज कएलक, जकर सहायतासँ
अइ तक शीतलभावना-प्रल, सामरस्यक शीतल आह्लाद दैत, प्रवाहित भेल । ई
सब हरिहरादि तत्त्व प्रारम्भमे सहायक भेल, द्वारा भेल, किन्तु परिणाममे शक्ति
संयुक्त शिवतत्त्वक आ' पुनः तद्रूपत्व-अभेदक वा सामरस्यक अनुभव शीतल
आनन्द देलक । एहि अभिप्राय ।

वीणापाद

१ (१७)

मुज लाउ ससि लागलि तन्त्री ।
अणहा दाखी एकि^१ कियत अवधूती ॥
बाजइ अली सहि हेरकवीणा ।
मुनतान्तिधनि विलसइ रणा ॥
आलि कालि बेणि सारि मुनिआ ।
गजवर समरस साखि मुनिआ ॥
जवे करहा करहकले^२ चाविड ।
बसिहा तान्तिधनि सखल विद्यापिड ॥
नाचन्ति बाजिअ गान्ति देवी ।
हुडनाटक^३ विसजा होइ ॥

× × ×

सुलं लोका शशि-आगलि तन्त्री ।
अनहत वण्डो एकीकृत अवधूती ॥
बाजइ अरे ! सखि ! हेरकवीणा ।
मुन-तान्तिधनि धनि विलसइ रणा ॥
आलि कालि बुड सा रि मुनि ।
गजवर समरस साखि मुनि ॥
जवे करहा करहकले^१ चावड ।
बसिहा तान्ति-धनि सखल विद्यापल ॥
नाचैत बजिअ गयैत देवी ।
बुड - नाटक विद्याग होइ ॥

सूर्यमण्डलक आभासरूप लोका (तुम्बा) हमर वीणा (अन्तःसुखनय
ज्ञानभयसंगीतक अभिव्यञ्जक नाडी-चक्र) कन्दारभासरूप तन्त्रीमे लागल अछि ।

१। सेन-बाँक

२। सेन-मुपेआ

३। अलीको । साखी, सेन-करहकले

४। अलीको । साखी-बुड नाटक

अनाहत-वीणादण्डमे समस्त वासनाकेँ सुपुम्नाद्वारा लीन (लय) कए देल ।
आव हे सखि ! महासुन्दर ! हेरकक वा शिवक वीणाबाजि रहल अछि, आव हम,
वीणाधारी वीणापाद, शिवस्व प्राप्त कएल आ' हमर सामरस्वजन्य संगीतकेँ
मुञ्जित करैत ई देह-चक्र नादहीन अछि । शून्य-तन्त्रीध्वनि सगु-रगु शब्द-
विलास, वाक्-विलास, करैत अछि । अलि-कालि, स्वरव्यञ्जन वर्णमे सा रि
धनि मुनि, इनर चित्त-गजेन्द्र सामरस्वतन्त्रिक अनुभवा कएल । तत्परचात
जखन ओ गजवर सखल विषयरूप अन्य गजशिशुसभकेँ वरमध्वंसक (विषय-
तण्ड-शिशुध्वंसक) ज्ञानप्रकाशकेँ चापि देल, दमित कए देल, तखन समस्त
क्षीप्तसङ्ग नाडीरूप तन्त्रीमे नाद-ध्वनि व्याप्त भए गेल । आब बच्ची, पुंविह्वारी
शिवरूप साधक नाचि रहल छथि, हुनक अभिज्ञा शक्ति गाबि रहल छथि
(सामरस्वभाव व्यञ्जक ध्वनि व्यञ्ज कए रहल छथि) तथा बुडनाटक वा प्रबुद्ध
शिवरूप साधकक आवन्दमयी लीला विश्रान्त भए रहल अछि ।

पादिवल्लपाद

१ (५)

भवतइ महए गम्भीर वेगे^१ बाही ।
हुज्जान्ते चिखिल मण्के^२ न थाही ॥
वामार्थे चादिल साङ्कम गइइ ।
पारणामि लोअ निभर तरइ ॥
काङ्क्षिथ मोहक पादि जोडिअ ।
अदअ दिअ दाखी निवाए कोहि [१ डि]^३ ॥
साङ्कमत बड़िजे इहिए आन सा होही ।
निबडि कोहि दूर मा जाही ॥
जइ तुम्हे लोअ हे होइव पास्तामी ।
पुच्छथु चादिल अनुत्तरसागी ॥

× × ×

भवतइ महए गम्भीर वेगे^१ बाही ।
दूर अन्ते [तीर] पिच्छइ, माके न थाही ॥

१। अलीको । साखी, सेन - माके

२। अलीको । साखी-कोरिअ । सेन-कोरिअ

धर्मिं चाहिल बाह (पूछ) गइह ।
 पारगामी लोक निर्भर तरह ॥
 काहि मोहतह पाठ बोधि ।
 अहम दइ देकारी निर्वाण बोधि ॥
 बान्ह (पूछ) चहि पहिने बास न होइह ।
 निश्चर बोधि दूर न जाह ॥
 यदि सोहैं लोक हे । होएवह पारगामी ।
 पूछह बाहिल अनुसर सामी [स्वामी] ॥

जगत् रूप नदी अथाह गम्भीर वेगसँ बहैत अछि, एकर दूनु तट, धर्म-अर्थ, विच्छेद अछि जाहिसँ एहि नदीमे उतरबै कठिन । मध्यमे जाइत जाइत सँ एहन विकट परिस्थिति आवि जाइत अछि जे थाह पाएब कठिन, कारण, विश्वक सम्पत्तिनु छवि रहस्यमय चिद्रूप । वृत्त लटक, धर्म-अर्थक, समन्वयक हेतु बाहिलपाद एक पुल गढ़ैत अछि, ओ पुल थिक कौल सम्प्रदाय; एहि पुलपर चहि पारगामी लोकसभ निर्भर भए जगत्-नदीकेँ चार कए सकैत अछि । मोहतहकेँ उपाधि, ओहि भवकेँ उदात्त शक्ति-अनुरागसँ आत्मज्ञान कए पइ (पीठस्थान) मे जोड़ि मिलाए लएह । अहम (शिवशक्ति-परस्परशिशिर परम अद्वितीय तत्त्व) रूप देखाईसँ मुक्तिरुल मूल ओहि निकालह, जाहिसँ आन्तरिक रहस्य ओकर भोगगम्य भए सकह । कौलमार्गरूप पुलपर चहि, दक्षिण-बाम उपचारक केरिमे नहि पड़ह, निकटहिमे चित्-बोध प्राप्त होइतह, ओ छुटि नहि जाह, अधिक दूर नहि चल जणवह । हे श्रीगुरु ! जँ तौ सभ पारगामी होखए चाहैत छह तँ अनुसर स्वामी (शिवतुल्य ईश) बाहिलपादकेँ पूछह ।

कम्बलाभरपाद

१ (८)

सोने भरिणी कछपा नावी ।
 रुपा धोइ नाहिक' ठावी ॥

बाहनु कामलि नखण उवेसँ ।
 गेला' जाम बाहुइह' कइसँ ॥
 खुबिउ उपाड़ी मैलिलि काचिह ।
 बाहनु कामलि सद्गुरु पुचिह ॥
 मांजत पड़हिले चउरिस' बाहका ।
 केहु बाल नाहि के कि' बाहक' पारअ ॥
 बाम बाहिण बावी मिलि मिलि माजा ।
 बावण मिलिल महासुहखाजा ॥

× × ×

सोने भरती कछपा नाव ।
 रुपा थापए नाहक' । मैल अछि' ठाम ॥
 खेवइ कम्बल [कामालि] भगन-उवेसँ ।
 रेल जगम बहुरइ कइसँ ॥
 लुट्टी उपाड़ी खोलल डोरी ।
 खेवइ कम्बल [कामालि] सद्गुरु पूछि ॥
 गांछि [बा बागी] १ [पर] चरने बहुदिन ताकए ।
 कछभरि नाहि के की खेवा कइ पारए ॥
 बाम-बाहिन बापि मिलि मिलि गांछि [मार्ग] ।
 बहै मिलल महासुख सङ्ग ॥

करुणामय वा शिवमय चित्त-नौका हमर शून्य-स्वर्गसँ (स्वर्गसदृश चकमक शून्यताविनशसँ) उड़ल अछि, सरल अछि, ओहिमे रूपसंवेदना वा रूप-धातु रखबाक स्थान नहि, अथवा नाहक ओहिपर रूप-वेदनाविक स्थापन । हे कम्बल ! वा हे कामालि ! शून्यत्वकरिणीक प्रादिक हेतु करुण-मिल-नौकाकेँ खेचि चलह, ई विश्वास राखइ जे एहि पारगमनसँ जे जीवन बोधि जएतह से कयमवि पुनः नहि आवि सकैत छह, निश्चित सौँ मुक्त भए जएतह ।

१। चगीको । शास्त्री, रेट—नेतो । २। चगीको । शास्त्री—बहु अर । सेन—बहुइह

४। चगीको । शास्त्री—चउ दिव । ५। चगीको । शास्त्री, सेन—के' कि

६। 'गांछ'कअर्थ कार्य सँ डीठ मे 'गांछि' (गांछक भागविशेष) अथवा समीचीन ।

ई चित्त-नीका जाहि आभास-दोपने बान्हल छलह से दोप-छुटी आव उपहि गेलह, जाहि अविद्याक ओरसँ बान्हल छलह से आव डील भए गेलह, तखन हे कमल ! [कामाक्षि !] शोरा चित्त-नीका-आहसमे कठिनता किएक होएतह ? सह-गुरुकेँ बुझि लेखि चलह । सामान्यतया लोक एहि नौकाक माकिपर [वा मार्गपर] चढ़ि नीत भए चालकात आश्रय तैयैत रहैत अछि । कह्यारि । गुरु-इदेश, वैधी-कृपा] नहि रहलासँ के कोना दार कर सकैत अछि ? तँ गुरुक आश्रयमे, गुरु-देवताक निर्देशरूपसँ चित्त-नीकाकेँ जीवन-नदीमे वा भाए-बाहमे आर्ग्य बढ़यह [चित्तकेँ विकसित कर चितिरूपमे परिणत करह] । एहि स्थितिर्विष्ट शङ्का-विचारक क्रममे कथलांभरबाव स्वयं कहैत छथि—डक विषय-सभकेँ ध्यानमे राखि इन आर्ग्य बढ़लहुँ, वामदक्षिण मार्गसभकेँ दृष्टाए अपन कीलसाधनाक अनुसरण कर नौका-माझिक वा मार्गक अवलम्बन कएल, यदैत बढ़ैत जगत्वास वादहिमे सहोदुख [-प्रदात्री शक्ति वा साधरस्य-भाष] सङ्ग भए गेल।

देण्डणपाद

२ (२३)

ढालत मोर घर नाहि पड़वेशी^१ ।
हाँडीत भात नाहि नित आवेशी ॥
बेङ्गल जाए^२ बड़हिल जाअ ।
बुझल दुधु कि बेण्टे समाए^३ ॥
बलद बिआएल गविआ बोके ।
पीछा दुहियर ए^४ तिला सौंके ॥
जे से^५ बुयो सोध निबुयी ।
जे सो^६ चोर सोइ साथी ॥
निते निते सिआल सिहे सम^७ जुमए ॥
देण्डणपाद मोर विरले^८ बुमए ॥

× × ×

- १। चमीकी। शास्त्री, सेन—इशेषी २। चमीकी। शास्त्री—बेङ्गल शहर। सेन—वेम गंगर
३। चमीकी। शास्त्री—पनाय ४। चमीकी। शास्त्री, सेन—बुझिए
५। चमीकी। शास्त्री, सेन—या ६। चमीकी। शास्त्री, सेन—पिआला सिहे पय
७। चमीकी। शास्त्री—विचरिसे

नमरे^९ मोर घर नाहि प्रतिवेशी ।
हाँडी मे भात नाहि नित आवेशी ॥
बेङ्ग (चैन)सँ साप काटल जाए ।
दूधल दुध की (स्तन) दुते समाए ॥
बल ह)य बिआएल गीआ बोके ।
पीछा दुइल जाए ए^४ तीन सौंके ॥
जे से^५ बुझि वेह (बुझ) निबुझि ।
जे से^६ चोर सेहे साथ (वि) ॥
नित नित भूगाल सिहे सम जुमए ।
देण्डणपादक गीत विरले बुमए ॥

उक्त नगर सहस्रार-मेरुशिखर हसर निवासस्थान; ओहिठाम अद्भुत परमशिवरूपमे हूब एकखरे छी, केओ पड़ोसी नहि अछि । अद्वियामे भात नहि, अर्थात् अपन शरीरमे ओभरणमे परिपक्व, प्रबुद्ध, चित्त नहि, चित्त चिन्तादात्म्य प्राप्त नहि कर सकए, तँ योगीन्द्रकेँ नित्य शून्यस्वरूपिणीक आवेश राखए पड़ैत अछि (अथवा चित्त नित्य विषयक आवेशमे डुबल रहैत अछि) । सामे बेङ्गल काटल जाइत अछि, अर्थात् चित्त काय-आर्ग्य खण्डित (नष्ट) कएल जाइत अछि (अथवा व्यवहृत शून्यरूपे जेना कुचिन्त-सर्पसँ दष्ट हो, वहिना अद्भुत प्रतीत भए रहल अछि) । बूझल दुध पुनः स्तनामसँ कोना प्रवेश करए ? अर्थात् योगीन्द्रक चित्त वा आत्मा पुनः अपन उद्गम शून्यमयी सहस्रनादे दक्षिण भए रहल अछि, ई आश्चर्यक गण्य । बलद प्रबुद्ध चित्त (बलद, बड़ब रहितहुँ) ज्ञानरूप सन्तान प्रसूत कएलाक आ गाय बन्धे रहल अर्थात् शून्य नैरात्माक प्रसवक प्रश्ने नहि । अरे ! देखह तीन सौंके शरीरस्थ पीठक पीहन करैत छी, शक्तिकेँ आकर्षण कर आत्मसीत करैत छी । एहि अवस्थामे बुमद, नहि बुमए हुन एके रङ्ग । विषयरूप परद्रव्यापहारी चित्त-चोर आ समाविस्थ चित्त-साधु हुन एके रङ्ग । आव ई साक्षात् अनुभव होइत अछि जे नित्य प्रतिनित्य सिआर सिहसँ लईत अछि अर्थात् संस्मरणशील चित्त सबल भए, स्थिर भए, अद्वयक, अद्वितीय वरसशिष्यक प्रभुता, छिनए भाइत अछि । देण्डणपादक एहि गीतक आशय विरले बुमए ।

१। शल—नगर [शल] , नर [शास्त्री] प्रया : आलङ्कारिक ।

ताड़कपाद

१ (३७)

अपने नाहिं सी^१ काहेरि शङ्का ।
ता महागुहरी दुष्टि गेल कङ्का ॥
अनुभव सहज सा भोल रे जोइ ।
चौकीटिबिमुका नइसी तइसी होइ ॥
जइसने अइलैल^२ तइसन अछइ ।
सहज पिथक जोइ भान्ति सा हो वास ॥
बाणकुण्ड सग्तारे जानी ।
बाक्यधातीत काहिं बखानी ॥
भणइ ताड़क एत^३ नाहिं अवकाश ।
जो बुकइ ता गलै गलपास ॥

× × ×

अपने नाहिं तैं ककर शङ्का ।
से महागुहरी, दुष्टि गेल कङ्का ॥
अनुभव सहज न भूल रे योगि (नू) ।
चौकीटि-विमुक्ता बइसी तइसी होइ ॥
जइसने छलह तइसन छइ ।
सहज-पृथक् योगि (नू) भान्ति न हो वास ॥
बहुआ—सीसी सग्तारे जानी ।
बाक्यधातीत काहिं बखानी ॥
भणइ ताड़क एत नहिं अवकाश ।
जे बुकइ ता गलै गलपास ॥

अपन (शरीरक) जखन शङ्का (चिन्ता) नहिं तैं खान कर चिन्ता ।
ओ महागुहरी तेहन छथि जे हकर सब कामना कल गेल, आव हन हुनकहिं

१। सेन-से २। सेन । शरणी—अइलै ३। नगीको—इहिलै

१। नगीको—एत । सेन—एत

लोग भए सन्तुष्ट छी । हे योगिन् ! सहज-सामरस्यक अनुभूतिके विसरह
नहि, जेना तेना चतुष्कल विषय-मण्डारसँ, संचित कर्मकोषसँ, मुक्त भए जाह ।
ई बुकइ जे सीहर आत्मा निश्च तत्त्व, सब दिन एक रूप रहवाला छइ । हे
योगिन् ! एहि सहज कौलसाधनासँ धोखहुलै कराक नहि होअह । भवसागर
पार करवाने अपन बाधेय (तत्त्वज्ञान) दिशि ध्यान रखवह । कतेक कहिअह
बोरा, अवाक्यमनोगोचर ककरा बुझाओल साप ! एहि साधनाक रहस्यमे
पैसबाक अवकाश समक हेतु नहि, जे एकर सर्म मुक्त तकर गरजे भर-कोस
पड़ि आवत, तकरा हेतु ई संसार फौसी जकाँ बन्धन प्रतीत होअत—ई ताड़कक
कथ्य छन्हि ।

कङ्कणपाद

१ (४४)

सुने सुन मिलिआ जवै ।
सखल धाम उदित तवै ॥
आच्छहुँ चउखन (ए)^१ शबोही ।
भाक निरोहै अणुअर धोही ॥
बिन्दु खाद ए हिउँ बइसा ।
आण चाहन्ते आण पिण्ड ॥
अवा आइलैसि^२ तथा जान ।
माके^३ धाकी सखल विहाय ॥
भणइ कङ्कण कलअल सादे^४ ।
सर्व विचुरिल तथतासादे^५ ॥

× × ×

सुने सुन मिलिआ [१] जवै ।
सखल धाम उदित [१] तवै ॥

१। नगीको, सेन । शरणी—आच्छहुँ चउ अछ

२। नगीको । शरणी, सेन—जवौं आइलैसि

३। नगीको । शरणी, सेन—माके (से)

श्री [हम] चञ्चल बोधी ।
 माफ- निरोधे अतुल्य बोधी ॥
 बिन्दु नाद न हिमे पहा ।
 आन देखते आत विमला ॥
 यदा अण्डरु तथा जान [यमन] ।
 माफे रहि सकल विहान [विजहीहि] ॥
 [माफे वसह सकल विहान (प्रभात)] ॥
 मनह कङ्कण कलकल - शब्द ।
 सब विचुरल तयता - नार्ये ॥

शरीरस्थ शून्य जखन अण्डरु-शून्यमे मिश्रित भए गेल, तखन सकल अतुल्य धर्म बढित भए गेल । हम सर्वदा संबोधित, गुरीयमे लीन रहैत छी । सत्य-निरोधसँ, मध्यविकास भेलपर, हम परम-शिवरूप बनि गेल छी । बिन्दु-नाद हृदयजन नहि, तँ वर्य शक्ति पदैत अछि । एक दिशि ध्यान गेलारै दोसर दिशि नष्ट भए जाइत अछि (नाद-बिन्दु दिशि गेलारै समाधिप दृष्टि जाइत अछि) । तहिना अण्डरु (आत्मरूपमे) तहिना चल तपइ । सत्यमे, शक्तिरूपमे, बिन्न रहला पर आव अन्य तत्वकेँ छोड़इ अथवा ई बुझइ के माध्यममाधित सगरी प्रभावकालीन प्रकाश प्रतीत होइतइ । कङ्कणपद कहैत छथि—तथतानादरी (शिवक 'तन्'-रूपतानादरी, विमली-शक्तिस्वभाव-नादरी) सम विचुर्य भए गेल, अविद्याक समस्त सुटि समाप्त भए गेल ।

अयमन्दोपाद

२ । ४६)

येनु सुखयो अदरो जइसा ।
 अन्तराले मोह तइसा ॥
 मोहविमुक्तता जइ मया ।
 तवें तुइ अवयवमया ॥

२। " — in the form of the 'thatness' (thatness of all existence or as pure consciousness). — A. I. T. B. — P. 18
 संग-संग, 'मोह' नाद-विमलीमात्र अविश्रुत (अक्षर पादो विमली-लक्षण) ।

न ड बाइ न ड तिमइ न च्छिजइ ।
 पेख लोक मोहें बलि बलि बाकइ ॥
 छाया माया काय समाना ।
 श्रेष्ठि पावें सोइ विजाणा ॥
 चिक्क तथतास्वभाये मोहइ ।
 भएइ जखनन्दि कुइए न होइ ॥

× × ×

येनु तपमे आदरो जइसा ।
 अन्तराले मोह तइसा ॥
 मोहविमुक्तता यदि मया ।
 तवें तुइ अवयवमया ॥
 ने ओ जरए ने ओ भीजए ने छेदक आए ।
 पेख लोक मोहें बलि बलि बाकए ॥
 छाया माया काय समाना ।
 दुइ पक्षे सोइ विजाणा ॥
 [दुइ पक्षे एए नारा ॥] ॥
 बितल तमतास्वभाये मोहइ ।
 भएइ जखनन्दि कुइए न होइ ॥

देखइ, स्थान वा वर्पणमे जेना तहिना चितक अन्तरालमे अमलक मोह, स्वप्नमे वा वर्पणमे वयार्थ-प्रतिबिम्बमात्र अर्थार्थ आपाततः सत्य प्रतीत होइत अछि, तहिना प्रतीत विश्वक मोह अछि । जँ मन मोह-मुक्त भए जएतइ तँ जन्म-मृत्यु-बन्धन दृष्टि जेतइ । आत्मा शिवरूप अजर अछि, जलप्रवेदाद्योन्य नहि अछि, अक्षेय अछि, किन्तु लोक मोहमें ओकर स्वरूप नहि चिन्हैत अछि आ' विषयवासनाक मोहमें अपनार्थ नष्ट कए ओहिमे ओकराए जइत अछि । छाया [शिवक, प्रकाशक आभासमयी शक्ति], माया [बन्धनमय करण बाली] आ' काया लोभमे वस्तुतः तादात्म्ये अछि, केवल आपाततः भिन्नता प्रतीत होइत

१ । चमीको—म पाश्चा

२ । इत्ये पूर्व पाठ टि० ।

अधि । वाम-दक्षिण सुहृ-मार्ग परिष्कारमे रक्षी विज्ञानपर जाइत अछि [अर्थवा
दूनु मार्गक अनुसार होनु एकहि परमशिवक नाना रूप अछि^१] । जयनन्दीपाद
कहेत छथि—हमर चित्त आब तथतास्वभावक सत्त्व, परम शिवतास्वभावक अर्थात्
विमर्शशक्तिक^२ सत्त्व शोभित अछि, अहन्ताक रहि स्थितिमे किछु कुरि नहि रहल
अछि, 'नेति नेति'क सूक्तान्वाद होइत अछि ।

तन्त्रीपाद

१ (२५)^३

धर्मोदयः पादाधिष्ठानं वज्रयदं नादः ।
पञ्चक्रमं अविश्वं तन्त्रिणः पदो विमलः ॥१॥
अहमेव तन्त्री स्वयमेव तत्तं ।
वित्तानं [च] स्वयंभक्ततल्लक्षणं ॥२॥
सार्धत्रिदशं गृहे वेममुक्तं त्रिधृतं ।
गगनं पूर्णं स हि तन्त्रययनं ॥३॥
अनाहतो वेमवरशब्दो हि गुरुपदैशोनाविरहितं ।
हं स्थितो हित्वा सुत्राणि व्याकृत्य हृदं त्रसारितानि ॥४॥
भण्णि गतः शून्यतया लक्ष्यशून्यतासारं ।
वचन [जाल] रसतन्त्री मोहजालमुक्ताः ॥५॥
× × ×
धर्मोदयः पादाधिष्ठान, वज्रयदं नादः ।
पञ्चक्रमं बीजं तन्त्रिक पद विमलः ।
हमहि तन्त्री अपने तानी ।
भरनी स्वयं अज्ञातलक्षण ॥

१. इसीमे कोष्ठागतसं पठक अनुसार, तें श्री दृश्य ।

२. विमर्शशक्तिकें शिव प्रकाशक स्वभाव मानत जाइत अछि—प्रकाशरस विमर्श-
स्वभावः—पराप्रवेशिका पृ० १

३. "The Caryā and the Sanskrit Commentary (save the last two
verses) are lost which are put here in Sanskrit retranslation from
Tib. version appended at the end of this work."—सगीको (पृ० २१) पृ० ६०

सहे तीनिहायक, गृहमे परतानमुक्त त्रिदश ।
गगन पूर्ण, ओएह पद तन्त्रययन [बीज] ॥
अनाहत परतान—वरशब्द गुरुपदैश सँ अविरहित ।
दूह [सूतक] ब्रह्म कादि, दूत धुमा हृद पसारल ॥
पण्णि जाए शून्यता सङ्ग लक्षण शून्यतासारमे ।
वचन [जाल] रस—तन्त्री मोहजालमुक्ता ॥

धर्मोदय भेल अर्थात् विमर्शस्वभावक स्फूर्ति भेल । नादक अनुसंधान-
रूप वज्रयदक अर्थात् शिवपदक प्राप्ति भेल । गुरुक पञ्चक्रमोपदेशक रूप हृदके^१ बीज,
तन्त्रीक पद विमल भए गेल अर्थात् विमलपद विमुक्त भए गेल, विकलपदीय भए
गेल । हम स्वयं जोलहा छी, तानी सेहो हमहि छी अर्थात् हमर आत्मा अछि
तानसमान गुलथप । भरनी जे शक्ति तनिक लक्षण अज्ञात अछि । एहि अनाद रूप
धरमे ई सहे तीनि हायक शरीर आव परतानसँ मुक्त अछि, एहिपर आय
चित्तविमुक्तोत्तररूप शिवताक प्रक्रियाक प्रयोजन नहि । आब ई शरीर अपन
शरीरस्वके छोडि शून्यस्वरूप, पूर्णरूपतास्वरूप, विमर्शस्वरूप पूर्णताके प्राप्त करै गेल
अछि । आय थो चित्त जे एहि रूपके प्राप्त करैत अछि सएह तें शिव तन्त्रययन
अर्थात् तत्त्वक चरित । हृदस्थित अनाहतनादे तें परतान [विम]क शब्दविशेष
शिव जे गुरुपदेशसँ कलमहुँ विरहित [कराक] नहि रहैत अछि । तासक आधार-
भूत सूत जे सुट्टीमे बान्हल रहैत अछि, तहिना जे एहि शरीरस्व प्राण तथा अपा-
नक तन्तु वा इडा-पिण्डलाक तन्तु, तकरा हम एहि दृष्टिसे कावश के धाम-दक्षिण
श्वास-नाडीक तलिके^२ अवकट कए मध्यविकास कएल, सुषुम्नाका अज्ञानाडीक
विकास भेल वा कुम्भक द्वारा वायु मध्यस्थितिमे लैठकि गेल । तदश्चान् कुण्ड-
लिनीसुषुम्नक सूतके^३ विकसित कएल । नासिपूरचक्रमे शून्यताशक्तिक प्रतिरूप
धुण्डलितोमे, तनिक लक्षण रहि अछि सादृशकमे, मोहि व्यववहालकरसँ^४
[विमर्शमाय स्वभावक अन्तरङ्ग चित्तके^५ वनव्याक जनित] सामरस्य-विमोह तन्त्री
[जोलाहा वा तन्त्रीपाद] आइ अन्य जालसँ, मोहजालसँ, विमुक्त भए गेल अछि ।

शान्तिपाद

१ (१५)

समस्तसन्धैषणसकृदविचारै^१ अलकड लकखण न जाइ ।
जे जे प्रज्वाले गेला अनायास भइला सोइ ॥

(१६६)

कुले कुल ना होइ रे मूढा-उज्ज्वल संसार।
बाल तिल-एक पाकु ए भूलह राजपथ^१ कन्धारा ॥
माया-मोह-समुद्रा रे अन्त न कुम्हसि बाहा।
अगे नाव न भेला दोसर^२ भन्ति न पुनश्चसि बाहा ॥
मुना प्राप्तर वह न दोसर^३ भन्ति न वाससि जान्ते।
एव^४ अष्टमहासिद्धि सिद्धि उज्ज्वल ज्ञानमे ॥
धाम दहिण दोबारा शान्ति बूलधेउ संकेतिउ।
बाट न गुमा खड तडि ए होइ आशि बुद्धि अट जाइए ॥

× × ×

एव न वेरमस्वरूप-विचार^१ अटवपराध न जाइ।
जे जे योग बटि गेला अतवाडा भेला सोइ ॥
कुले कुले न होइ रे मूढा! योग बाट संसार।
बाल तिल एक वाक् न मुलह राजपथ अतकधारा ॥
माया-मोह-समुद्रा रे अन्त न कुम्हसि बाहा।
अगे नाव न भेला देखिअ, भन्ति न पुनश्चसि बाहा ॥
मुना प्राप्तर (वाँतर) ऊह न देखिअ, भन्ति न वासह जेते।
एत अष्टमहासिद्धि सिद्धि योगधारा जेते ॥
धाम दहिण दो बारा छाँड शान्ति बूलधेउ संकेति ॥
बाट न गुमा खड-तर न होइ, आशि भूनि बाट जाइ ॥

स्वस्ववेदन (आत्मधीय) (आत्म-प्रत्यभिज्ञा) क स्वरूप विचार कपलास
शान्तिवाद अलक्ष्यलक्षणयुक्त तत्त्व दिशि नहि जाइत छथि। जे जे योगी साधक
नहि सरल मार्ग, कोलमार्गसँ गेल छथि, से सम यिनु बाटक, बाटसँ मुकल, भए
गेलाह। एहि सम्प्रदायसँ ओहि सम्प्रदायमे एना बहल वचन नहि चलल
एक सम्प्रदाय कोल सम्प्रदायकेँ, सोन सम्प्रदायकेँ, एहि अन्तसे पकड़ने रहल
हे बाल्योगिन्! तिलो भरि ई वाक्य नहि बिसरह जे ई पथ राजपथ, स्वर्गपथ-
सदृश पथ थिक। नाया-मोहक समुद्रक अन्तमे कतहु थाइ नहि भेटतह।

१. योगीको, सेन। शास्त्री-भिर। २. योगीको, सेन। शास्त्री-राजपथ
३. योगीको, शास्त्री, सेन-दोसर ४. योगीको, शास्त्री, सेन-एव

एहि अगम्य समुद्रमे आगौ नावो करुआरि नहि देखैत होएवह, तथापि तो
अन्ति भए कोनहु शुभभुक् नहि पुबैत छहुनह। ओएह देखह, एतए प्राप्तर
(वाँतर) देखैत नहि छहक? आगौ बढह, अन्ति छोडह। कोश मार्गक, सरल
पथक, अतुगागो भेने एहि संसारहिने अष्टमहासिद्धिलाभ भए जेतह। वास-
दहिण, धृन् पथ, छोडि शान्ति विशार कए रहल छथि। एहि मार्गमे कतहु बाट,
गुह्य, खड-तर आदि प्रतियन्धक नहि (वस्तवक डर नहि); आशि भूनि शान्ति-
माइ जाए रहल छथि।

२ (२६)

मुला धुनि धुनि आँसु रे आँसु।
आँसु धुनि धुनि निरवर सेतु ॥
तब से हेरक^१ ए पाविअइ।
सान्ति भएइ क्रिण स भाविअइ ॥
मुला धुनि धुनि मुने अहारिउ।
पुन जइआ^२ अरणा पटारिउ ॥
वहत बढ^३ दुइ भार न दिशअ।
सान्ति भएइ वाजाय न पइसअ ॥
काय न कारण न एहु जुगति।
सम्पद^४ वैधाय कोलधि सान्ति ॥

× × ×

तूर धूनि धूनि अँसु रे अँसु।
अँसु धूनि धूनि निरवर सेव ॥
तीओ हेरक न पाविअइ (प्राप्त्यो)।
सान्ति भएइ, की ओ भाविअइ (नाय्यो) ॥
तूर धूनि धूनि मुने अहारल।
धूनि लए अपना (के) चाटल ॥

१. योगीको: शास्त्री-तबसे हेरक। सेन-तब पड़े दख

२. योगीको: राखी-उदधौ। सेन-उदधौ

३. योगीको: शास्त्री-बट। सेन-बाट

शेडत ? एहि समस्यक समाधान अनायास भए जायत जखन एहि पोथीमे निर्दिष्ट गीतपर ध्यान जायत; कारण, एहिमे हम प्रत्येक गीतक ऊपरमे, कोष्ठमे, उक्त तीन संस्करणमे आएल ओहि गीतक संख्या दइ तेल अछि। जे ओहि संस्करण-सभकेँ देखबाक कम ई रहत जे एहिमे एहि पोथीमे पारिभाषिक शब्द लग निर्दिष्ट संकेतक अनुसार गीत ताकि लेल जाय तखन, जे तुलनाक प्रयोग हो, ओहि गीतक ऊपरमे कोष्ठमे दल संख्या उक्त संस्करणसभमे देखल जाए, अनायास ओ गीत भेटि जायत।

एहि अनुक्रमणिकामे जे संकेतसभ प्रयुक्त भेल अछि तकर विवरण एहि प्रकारें तुलनाक थिक :-

- १। कविक नाम-संकेत—नाम संकेतक विवरण स्वतन्त्रे शेडत एहि पोथीक समाप्त संकेतक विवरणमे। कविक नाम संकेतक आगौं संख्या एहि पोथीमे ओहि कविक ओहि गीतक कम संख्या थिक, जाहिसे सं० १ संकेतक अर्थ सरहपादक गीतक संख्या १ तुलनाक थिक, तावर्थ ई जे ओ पारिभाषिक शब्द सरहपादक गीत सं० १ मे शेडत, एवम्भकारें पारिभाषिक शब्दकेँ गीतमे ताकल जाए सबैत अछि।
- २। = चिह्नक अर्थ पतये जे पूर्व आएल शब्दक द्वितीया अर्थ आगौं आएल शब्द भेल तथा पुनः तकर पारिभाषिक अर्थ तकर आगौं शब्द भेल।
- ३। अर्थक आगौं कोष्ठमे आएल संख्या—प्रस्तुत पोथीक सूचिकामे सम्पत्तिक अनुच्छेदक संख्या।
- ४। दू०—द्वय।
- ५। सं० टी०—संस्कृत-टीका-भाग ओहि गीत वा गीतसदक।
- ६। सं० आ०—संस्कृत-आख्या [रत्नकमण्ड] जे 'चर्वांगीतिकोष'मे आय।
- ७। सं० टी०—न०० शब्दक संकलनक उत्तरभागमे धंगला टीका।
- ८। द० गी० को०—चर्वांगीतिकोष
- ९। ता० धी० सा० सा०—तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य
- १०। सं० श० को०—संस्कृत-शब्दकोश [आप्ते महाशयक]
- ११। I. B. L.—The Indian Buddhist Iconography.
- १२। पा० वि०—पादविषय

१३। तु०—तुलनीय

१४। पु०—पुनः

१५। देजग—ई सूचित करय जे जे ओहिसे ठीक पहिने आएल अछि सभ।

१६। प्र०—प्रकाश। सू०—सूच।

पोथीसभक विशद परिचय पुस्तकसूचीमे आय, ई केवल पारिभाषिक शब्दसूचीक संकेत-विवरण भेल। पारिभाषिक शब्दसभकेँ यथासाध्य विषयक दृष्टिसे वर्गसभमे बाँटि अर्थ प्रस्तुत कएल जाइत अछि।

परमसत्य

- अचिन्त [सं० १] = अचिन्त्य = परमसत्य वा परमशिव [६३]।
 अजरामर [सं० १, वि० १] = मुक्त [११७, १२१-१२५]।
 अनुत्तर [क० १] = अनुत्तर [६२] = जाहिसे ऊपर कोनो सत्ता नहि।
 अद्वय [मु० ५, चा० १] = अद्वय = परस्परभिन्न शिवशक्ति [५१]।
 अनुत्तर [चा० १]—दू० अनुत्तर।
 अपा [सं० २, आ० १] = आत्मा [५४-५६]।
 अभिध [मु० २] = अमृत = सहस्रारस्थ महु [१०६] वा सामरस्यानन्द [११६]।
 अभिधा [सं० ४] = अमृता = अमृत [दू० अभिध]।
 अलक्षकत्व [दा० १, शा० १] = अलक्षकत्व [६३]।
 आसव [का० २] = मद्य = अमृत। दू० अभिध।
 एकाकार [का० ४] = एकाकार भव = समरस भव [६३-६५]।
 कण शून [का० ६] = कण-शून्य = शिवशक्ति [५३]।
 खसमे [श० २] = गगन सनाह = शून्य सनाह [५५]।
 गगन [मु० ७] = गगन = शून्यरूप शिवशक्ति [५४]।
 जियपुरा [टी० १] = जिनपुरा = महाकुसुमपुर [सं० टी०] = परलोक, सात्त्विक अवस्था [११५]।
 जिनपुर [का० १, का० ५] = जिनपुर। दू० जियपुरा।
 धाम [सं० १, का० ५, क० १] = अनुत्तरधाम [६३] = परमपद।
 परम निवासे [दा० १] = परम निर्वाणमे = परम मोक्षमे [१३२]।

परम मोक्ष [का० ४] = परम मोक्ष = परमा मुक्ति [१३२] ।

पूर्ववन्त्र [का० ६] = पूर्ववत्कलायुक्त बोधिविचित्रवन्त्रमयज्ञ [मं० दी०]

= सहस्रारस्थ बोधशोक अन्तरङ्ग विचित्र वा प्राण [२७३, ३२०] ।

बोधि [सं० २, चा० १] = बोधि = बोधिविचित्र = परमशिव [८४]

= प्रकाश-विन्दो [६२] ।

बोही [क० १] = बोधी = बोधिविचित्र [द्र० बोहि] ।

महासुख [कु० ३] = सामरस्यानन्द [११५] ।

महासुख [सु० १, दा० १, सु० ४, का० ६, का० ७, कन्व १] = महासुख =
सामरस्यानन्द [११५] ।

महासुखे [सं० १, सा० २, सु० ५] = महासुखे [द्र० महासुख] ।

महासुखे [सा० २] = महासुखे [द्र० महासुख] ।

सुकल [सं० २] = सुकल [१३२] ।

सुका [सु० ७] = सुकल [द्र० सुकल] ।

वाक्पथोक्त [का० ११, ता० २] = वाक्पथोक्त अतीत परमतत्त्व [३३] ।

वाहणी [वि० १] = मय = "वाहणीति सुखप्रसोदत्वात्" [सं० दी०] से परत-
शिवमे लीन भेदा पर सामरस्यानन्द या सहस्रारस्थ मयु [१०३] ।

विरमानन्द [सु० ४] = विलक्षण अनुमानन्द [सं० दी०] = तुरीयानन्द [३१०]
= सामरस्य-समाधिक आनन्द [३१०] ।

विहाण [सु० ३] = विहाण = ज्ञान [-शून्य]क उदय [१७२] ।

शून्य [भा० १] = शून्य [७५] ।

शून्यताराजो [कु० ३] = महासुख [द्र० गीतक ओही पंक्तिमे 'महासुखतामा'
= सामरस्यानन्द [११५] ।

सञ्जलानुत्तर भाषी [दा० १] = सञ्जलानुत्तर भाषी = समस्त विश्वके
अनुत्तर परमतत्त्व (क प्रशिविन्त्र) भाषी [द्र० अनुत्तर] ।

१. चर्चागीतमे ऐ वधा ए क प्रयोग परमान्त विमलिके किन्तु दोहर रस भेद अस्ति । तुरीयामे
ए वधा समीपमे ऐ क प्रयोग भेदित अस्ति [द्र० विद्वत्सद्विषयज्ञ बोधकोश-भूमिका
पृ० ५१-५२] । किन्तु हमरा कान्तु अतदु ७७ कन्वक अतिरिक्त ऐ क प्रयोग तुरीयामे वधा
ए क प्रयोग समीप विमलिके सेहो भेदित, प्रस्तुत अनुक्तमणिकामे सर्वत्र सं ज्ञाया तथा
सं० दी०मार्गे ई प्रख्यापुष्ट भेद अस्ति । अतदु ए क अर्थमे ए जायत सेहो भेदित ।

सञ्जलवेद्य [सा० २] = स्वसंवेदन = ज्ञा [१७५] ।

सञ्जलवेद्य [सा० १] = स्वसंवेदन = [द्र० सञ्जलवेद्य] ।

समरस [वी० १] = समस्त अनेकतामे एकताक अनुभूति [६६]
= सान्तरस्यमय [३५५-३५६] ।

समरसे [सु० ७] = समरसस्थिति [६६] ।

सहज [सा० ११] = सहजे [स्वभावतः, स्वतः] प्राप्त सामरस्यक आनन्द [१७१] ।

सहज निदाह [का० १०] = सहजनिदाह = सामरस्यसमाधि (तुरीय)मे
हुवल [१४१] ।

सहजनिदाह [सु० ७] सामरस्यमय शिवशक्ति (= परमशिव) क
महाद्य दत्त [१४१] ।

सहज खड्गा [सु० ५] = सहज स्वरूपा = सामरस्यमय शिव-शक्तिक
स्वरूप [१४१] ।

सहजानन्द [सु० ४] = सामरस्यानन्द [१४१] ।

सहजे [सा० ३, का० १२, वि १] = सहजे = सहजक संग = शिवशक्तिक संग,
सामरस्य [१४१] ।

सुख विचार [आ० १] = शून्य-विचार = शून्यक विचार = परमतत्त्वक
विचार [७४] ।

सुख करण [दा० १] = शून्य-करण = शक्ति-शिव [८३] ।

सुख सुख [क० १] = शून्य शून्य = वल्लादशून्यमे विश्वशून्य वा परमशिवमे
शून्यताशक्ति [७४-८३] ।

सुखे [का० १०] = सुखे = सामरस्यक महासुखे [११६] ।

सुख प्रान्तर [सा० १] = शून्य प्रान्तर वा शून्य परान्तर = परमतत्त्वक
साम्राज्य [७४] ।

सुख रूप [सु० ८] = सुख-रूप वा शून्यरूप (आकार) [७४] ।

शक्ति

- अष्टकुमारो [का० ६] = अष्टकुमारो = अष्टप्रकृति [बं० टी०] [६८] अथवा
अष्टशक्ति [कुमारी = शक्ति, द्र० शिवसूत्र प्र० १, सू० १३] ।
अक्षयानन्द [लु० २] = जलचन्द्र = जलमध्य चन्द्र-प्रतिबिम्ब । द्र० प्रति-
बिम्बवाद [२२१] ।
कमलसिनि [मु० ४] = कमलसिनी = कुण्डलसिनी [३४४] रूपी पद्मिनी महापद्म-
वन दिशि जात ।
सखसंभावे [मु० ७] = गगनसमान स्वभावे = शून्यस्वभावे = विमर्श-
स्वभावे [७७] ।
गगन [डो० १, का० १३, कन्व० १] = गगन = शून्यशक्ति = विमर्शशक्ति [७७] ।
तथया [स० ४] = गगना = शून्यस्वरूपिणी [गगनद्वया] [८०] ।
गगने [स० ३] = गगने = शून्यतास्वभावमे = महतीविमर्शशक्तिस्वभावमे [७७]
गगन [त० १] = द्र० गगन ।
छाया [ज० १] = छाया । द्र० प्रतिबिम्बवाद [२२१] ।
जलविम्बाकारे [स० ४] = जलमध्य प्रतिबिम्बक आकारे । द्र० छाया ।
जोइणि [का० ८] = योगिनि = योगिनी = महामुद्रा [२१०] ।
जोइणी [मु० ४] = योगिनी । द्र० जोइणि ।
जोइनि [सु० १] = योगिनि । द्र० जोइणि ।
जोम्बि [का० ३, का० ७] = जोमिनि = जोमिनि वा महाशक्ते [३३२] ।
जोम्बी [डो० १, का० ८, पा० १] = जोमिनि । द्र० जोम्बि ।
तथता [का० २, का० १०, क० १, ज० १] = तथारूपता = विमर्शस्वभाव [३०३] ।
दास्य प्रतिबिम्बु [मु० ६] = द्रव्य-प्रतिबिम्ब । द्र० छाया ।
नैरास्यि [श० २, दा० १] = गृहिणी रूपमे भाविता नैरास्यी [ता० बी०
सा० सा० ३० ३२३] = गृहिणीरूपमे भाविता शून्यस्वरूपिणी,
निराकारशक्ति [२०८, २२४] तथा [७६] ।

- पारिम क्लृप्ते [दा० १] = परम क्लृप्ते = परमा शक्तिमे [१५७] ।
पोइया [डो० १] = नीच जातिभ कन्द्या (ब० गी० को० पु० ४६), निम्नस्थिता स्त्री ।
= शोभिनि तथा निम्नसम्पत्कन्धा कुण्डलसिनीशक्ति [३३२] ।
प्रडुकी [डो० १] = प्रडुकी = नवयौवना (सं० श० को०) = युवती शक्ति [मुद्रा] [१६५]
अथवा कामोत्पन्ना कुण्डलसिनीशक्ति [३३२] ।
विआसी [सु० १] = विश्वाइत = जगत्प्रसूती महामुद्रा [१६६] ।
महामुदेरी [ता० १] = महामुद्रा [२०८] ।
मातङ्गी [डो० १] = मातङ्गी महाविद्या वा चाण्डालिनी (सं० श० को०)
= कुण्डलसिनी शक्ति वा चण्डाली = कुण्डलसिनीशक्ति [३४२] ।
मायाहरिणी [मु० ३] = महासायात्मरूपिणी हरिणी = अन्तःशक्ति [३३१] =
रूपिणी हरिणी ।
गृहिडिनि [यि० १] = गृहिणी वा शोषिणी [नृदयता वा कलवारता]—
द्र० सं० श० को०] = रतिप्रिया शक्ति [२२१] अथवा
रतिप्रिया कुण्डलसिनीशक्ति [३३१] ।
शून्य संयुक्ता [का० १२] = शून्य-संयुक्ता = शून्यस्वरूपिणी विमर्शसं-
युक्तपरामर्शसंयुक्ता [७७] ।
मुद्रा [स० ४] = शून्य = शून्यस्वरूपिणी [८०] ।
सुण तद्वर [का० १३] = शून्य-तद्वर = साधारणमे शून्यपद [७४ ख] ।
सुणमेहली [श० २] = शून्य-नहिला (सं० छा०) = स्त्रीरूपमे भाविता
शून्याकारा शक्ति वा महामुद्रा [८०, २०८] ।
सुण विचार [का० १] = शून्य-विचार = शून्यशक्तिक [८०] विचारण ।
सुणे अहारिव [शा० २] = शून्ये (शून्यके) आहारल = शून्यके आहारल कल
= शून्यशक्तिके आत्मसात् कल, अन्तःसाधना
द्वारा आत्मलीन कल [३३६] ।
सुन नैरास्यि [श० १] = शून्यनैरास्यी । द्र० नैरास्यि ।
सुनुपास [सु० १] = शून्य-पञ्च = शून्य-शक्तिक [८०] पञ्च ।
सोने [कन्व० १] = स्वर्णे वा शून्ये = स्वर्णे वा [तत्त्वभाद चकचक करैत]
शून्यता (विमर्श) शक्तिर्ये [८०] ।
हूँ अथ द गगना [स० ४] = हूँ-अथ द गगना = हूँकारवीर्योद्भवा गगनद्वया
महाविद्या (तारा), महती शक्ति [१५७] ।

शिव

- करुणाहमरुति [आ० १] = करुणा-हमरु = करुणामय शिव [२३] क डमरु ।
 करुणा नावो [कम्प० १] = करुणा-नाव = करुणामय वा शिवमय चित्त-
 लीका [८३, ८६, ८६, १६६] ।
 करुणालेह [गु० ५] = करुणा-लैव = शिवक करुणामय स्वरूप [८३]-लैव ।
 खमण भतारे [कु० २] = ख-गल भतारे = गलन-मन स्वामी = शून्य-चित्त-
 स्वामी = शिष्टरूपमे चित्त-स्वामी (चिच्छक्ति) [८६] ।
 हेरुख [वी० ३, शा० २] = हेरुख = प्रज्ञाक स्वामी [L. B. 1. 1. P. 157]
 = शक्तिक स्वामी [८६] = शिव [८१] ।

साधना-मार्ग

सामान्य प्रमाण

- अष्टमहासिद्धि [शा० १] = अष्टमहासिद्धि [१५३] ।
 इष्टामाला [का० ११] = इष्टक माला [१५३] ।
 उजुवाट [स० २] = खोम वाट [१४८, १५३] ।
 एवंकार [का० २] = एवं मन्त्र [१५४, १५३] ।
 कपाली [का० ३, का० ४] = कापालिक [१४६, १५३, १५८] ।
 कपाली [का० ४] = कपाली । इ० कपाली ।
 कापालि [का० ३] = कापालिक । इ० कपाली ।
 कुल लह [स० ३] = कुलाश्रित भए = शक्तिक आश्रित भए वा कौल मार्ग
 [१५३] ।
 कुलें कुल [डो० १] = इत्यस्ततः तदपर [ब० गो० को० गु० ४६ पा० वि० कुल
 मानि] अथवा एक देहसँ दोसर देहमे [प्रस्तुत गौलक मैथिली
 टीका प्रष्टव्य] ।
 कुलें कुल [शा० १] = एहि कुलसँ ओहि कुलमे = कौलक एक आत्मनसँ
 दोसरमे । कौलक हेतु प्रष्टव्य [१५७] ।

- चयथी [कु० १] = छाचार [६] ।
 जोइ [आ० ३, का० १२] = योगी [१५८] ।
 जोइया [गु० ६] = योगिजा । इ० जोइ ।
 दारिण बान [वा० १] = दक्षिण-वाम मार्ग [१४८] ।
 वामार्थ [वा० १] = धर्म-अर्थ पुरुषार्थ भव्य [३४६] ।
 वाम-दक्षिण [स० २, डो० १, कन्व० १, शा० १] = वाम-दक्षिण ।
 इ० दक्षिण-वाम ।
 वीरा [गु० १, कु० २] = वीरभावप्रति [१५७] ।
 हाडेर माली [का० ३] = हाडक माला = अस्थिमाला [१५३, १५७] ।
 हूँ [स० ४] = हूँ-बीज (कूर्च-बीज) [१५३, ३४१] ।

काय-वाक्-चित्त [त्रिधातु]

- काय वाक् चित्त [का० ११] = काय-वाक्-चित्त [१६६] ।
 कायवाक्चित्त [दा० १] = कायवाक्चित्ते । इ० कायवाक्चित्त ।
 त्रिधातु [स० १] = त्रिधातु = कायवाक्चित्त [स० डो०] [१६६] ।
 त्रिधातु [गु० २] = त्रिधातु = त्रिधातुमे [स० डो०]
 = कायवाक्चित्तमे [१६६] ।
 त्रिनिर्घ पाटें [म० १] = तीनि पाटमे = तीनि बीठमे [स० डो०] = कायवाक्चित्त-
 पीठमे [स० डो०] [१६६] ।
 त्रिधातु [का० ६] = तीनि धातुमे = कायवाक्चित्तमे । इ० त्रिधातु ।

मैथुन [महामुद्रा-साधन]

- कमल कुलिश [गु० १, वा० १] = पद्म-वज्र = भगलिङ्ग [३४, १८५, २२६] ।
 कुन्दुरे [गु० १] = वीन्द्रिय संयोगमे [२२७] = मैथुनमे [२२७] ।
 कुलिशवज्र [कु० ३] = वज्र-पद्म = लिङ्ग-भग । इ० कमलकुलिश ।
 छिणाली [का० ७] = छिनारी = छिनारि = समक आत्मा (-रूप शिव)क संग
 रमण केसिद्धारि [२२३] ।
 ज्ञानचौवन [कु० २] = ज्ञान-चौवन = ज्ञान-चौवन वा तरुणचौवन [ब० गो०
 को० गु० ६६ पा० वि०] [२४४] ।

विषद्वय [सु० १] = विषद्वय = नाडीवय [१४६] क अथवा अथवा योम्यय [२२३] ।

दशमि दुआरठ [वि० १] = दशम दुआरिसे = वैरोवन-द्वारसे वा दशम इन्द्रिय उपस्थित [२२७] ।

देवता साले [सु० ८] = पदुमा-साले = पदुमा-द्वारनिमे [सु० चालन-सं० श० को०] = पदुमारमे = भगवारमे [३४] ।

= प्रशामे [१८६] ।

= शक्तिमे [१८६] ।

विद्याप [सु० २] = विद्याप = जगतके प्रसूत करव । इ० विद्यापी (शक्ति) ।

वज्रवारी [श० १] = पुँचिजुवारी [४३४] = उपाय [१८५] = शिव [१८६] ।

वज्रपद [सु० १] = लिङ्गपद [३४] = उपायपद [१८५] = शिवपद [१८६] ।

वाजपथाव [सु० ८] = वज्रनाव = लिङ्ग-नाव [३४] = उपायनाव [१८५] = शिवनाव [१८६] ।

चिन्ता

करहा [वी० १] = करभा = युवक हाथी [सं० श० को०] = चिन्तागत [सं०, १६५, १६६] ।

करिया [का० २] = करिय (अनादरमे) = गज = चिन्तागत । इ० करहा ।

कालमुमा [सु० २] = कालमुमा = दुष्ट चञ्चल चित्त-मूल [१६६] ।

गजवर [वी० १] = गजवर = चिन्तागतवर । इ० करहा ।

गजवरें [का० ५] = गजवरें । इ० गजवर ।

विष [सु० ८] = चित्त [सं०, १६६] ।

विषकणहार [का० ६] = चित्त-कणहार [१६६] ।

चिन्तराज [सं० २, भा० १] = चित्तराज [१६६] ।

चिन्ता विकरणे [आ० १] = चिन्ता विकरणे = चित्त विकारे = विकल्पमाल [१६६] ।

चिन्ता चित्तने [भा० १] = चित्तचिह्ने = चित्तचिह्ने, चेतनासे [१६६] ।

चित्त [दा० १] — इ० चिन्ता ।

चित्तराज [का० ६] — इ० चिन्तराज ।

चोअगण्डा [सं० १] = चिन्ता-गण्डा । इ० गजवर ।

चीअ धिर करि [सं० ३] = चित्त स्थिर कण [१६६] ।

चञ्चल चीए [सु० १] = चञ्चल चिन्ता [१६६] ।

चञ्चल मुला [सु० २] = चञ्चल चित्त-मूल [१६६] ।

चिन्ता मण [श० १] = निज मन = निज चित्त [१६६] ।

चिन्ता मन [सु० ५] = निज मन [इ० चिन्ता मण] ।

बलदे [सं० ४] = बलदे वा बलदे = इन्द्रियके बल देनिहार बलदे समान विकल्प-युक्त चिन्ता [१६६] ।

मण [आ० १, का० १३] = मन = विकल्पयुक्त चित्त [१६६] ।

मणरअला [सु० ७] = मनरतता = मनोरतता = मनोरतन = विकल्पित चित्त [१६६] ।

मुचअ [सु० २] = मूषक = मूल = चञ्चल चित्त-मूल [१६५] ।

हरिया [सु० १] = चित्त-हरिया [१६६] ।

विकल्प

अवलागमण [का० १०] = आवागमन = जन्मकरण [१७०, १७१] ।

अवलागमणा [श० १] = आवागमना = आवागमन । इ० अवलागमण ।

अवलागवणा [सु० २] = आवागमना = आवागमन । इ० अवलागमण ।

आवरणा [का० ३] = आवरण = मायाक आवरण [१६६] ।

अविदार [सं० ४] = अविचार = अविद्या [१७६] ।

अविद्या [का० २] = अविद्या [१७६] ।

आलाजाला [का० ११] = इन्द्रजाल [च० नी० को० पृ० १३१ पा० ८] = इन्द्रजाल जकें सिध्या मायाजाल [१७७] ।

इन्द्रिय [आ० १] = इन्द्रिय [१७२] ।

इन्द्रजाल [सु० ५] = इन्द्रिय-जाल [१७२] वा इन्द्रजाल [१७७] ।

इन्द्रियविषया [सु० ८] = इन्द्रियविषया = इन्द्रिय-विषय [१७२] ।

इन्द्री [दा० १] = इन्द्रिय [१७२] ।

करण कपटेर [सु० १] = इन्द्रियकपटक [१७२] ।

कश्चिरे [का० २] = हथिनीके = इन्द्रियरूप हथिनीके [१७२] ।

- गोहाली [स० ४] = गो-हाली = इन्द्रियशाला (शरीर) [१७२] ।
 चनिहा [का० ३] = चनेहा = मायाक आवरण-प्रपञ्चजाल (अपन हाथसँ
 बोनब) [१६६] ।
 जाममरण [मु० ७] = जन्ममरण [१७०, १७१] ।
 नणन्द [का० ४] = ननन्द = ननदि [ननान्दर-सं० झा०] वा वजुरिन्द्रियादि
 (सं० टी०) = ननदि वा ज्ञानेन्द्रिय-कर्मन्द्रिय [१७२] ।
 पञ्चजणा [मु० ३] = पञ्चजना = पञ्चविषय (सं० टी०) = इन्द्रिय-विषय [१७२] ।
 पञ्चपाटण [मु० ५] = पञ्चपत्तन = (रूपवैदनासंज्ञासंस्कारविज्ञान) पञ्चस्कन्धपर
 आश्रित अहङ्कारममकारादि (सं० टी०) [१७३] ।
 पञ्च विसअ [म० १] = पौंच विषय = पञ्च ज्ञानेन्द्रियक विषय [१७२] ।
 बान्धण [का० २] = बन्धन [१७३] ।
 भय विण [आ० १] = भय-घृण = भय-घृणा = अष्टपाशमे भय-
 घृणापाश [१७४] ।
 भव [का० १२] = जगत् [१६२] ।
 भवनिर्वाणा [स० १] = भव-बन्धन-मोक्ष [१७३] ।
 भवनिर्वाणे [का० ५] =—द्र० भवनिर्वाण ।
 भवमोह [स० ४] = भव-मोह = संसारक मोह [१७२, १७३] ।
 भावाभाव [मु० २, मु० ५, मु० ७, का० २] = भाव-अभाव विकल्प [१६६] ।
 भान्तिहँ [मु० ६] = भान्तिहँ [१६१] ।
 माया [ज० १] = माया [१७२] ।
 मायाजाल [का० ६] = मायाजाल [१७२] ।
 माया मोहा [श० २] = मायामोहा = माया-मोह [१७२-१७३] ।
 मायामोह [शा० १] =—द्र० माया मोहा ।
 मोह [कु० ३, का० १०, वा० १, ज० १] = मोह [१७३] ।
 मोहँ [भा० १] = मोहँसँ । द्र० मोह ।
 रस रसानेरे [स० १] = रस-रसायनक [१७५] ।
 राग द्वेप [का० ४] = राग-द्वेप [१७२] ।
 राजसाय [मु० ६] = रज्जु-सर्व = रज्जुमे सर्वक भान्ति [१६१] ।
 बाणत [मु० ७] = बाणत = जालसँ (सं० श० को०) = मायाजालसँ [१७२] ।

- वासना [मु० ६] = वासना [१७५] ।
 विषयेन्द्रिय [का० ६] = विषयमाहक इन्द्रिय [१७२] ।
 विसअमण्डल [स० १] = विषयमण्डल [१७०, १७५] ।
 सुख दुखेहँ [मु० १] = सुख-दुःखसँ [१७२] ।
 सुभासुम [का० १३] = शुभाशुन [१७२] ।
 हरि हर बाह्य मझा [वा० १] = हरिहरप्रकाश भट्ट [१७२, १७३] ।

योगसाधन [अन्तःशक्तिसाधन]

- अणुहकसन [म० १] = अनहत-कर्पण = अनाहत-कर्पण = अनाहत-धन-
 गर्जन [३०४, ३०६] ।
 अणुहा [वी० १] = अनहा = अनहद = अनाहत नाद [३०६] ।
 अथराति [मु० ४] = अर्थरात्रि = सहस्रारसँ दृश्यधक मध्य धरिक प्राणक
 स्थिति [२६४] ।
 अनहा डमरु [का० ४] = अनाहत-डमरु । द्र० अणुहकसन ।
 अन्तराले [ज० १] = अन्तरालमे = मध्यमे [३५०, ३५१, ३५४] ।
 अनाहत [त० १] =—द्र० अणुहा ।
 अनिअ पाण [मु० १] = अमृत पान = सामरस्ययोगामृत [३३६] ।
 अवधूइ [मु० ३], अवधूती [वी० १] = अवधूती नाड़ी [२४६] = सुषुम्ना
 नाड़ी [२५२] ।
 आलि कालि [का० १, का० ४, वी० १] = इडा-पिण्डला नाड़ी [२५०] ।
 ओडिआये [मु० १] = उड्डीयाने = उड्डीयान सीठमे [३५६] ।
 कमल [मु० ४] = शिरःस्थ महामुखपत्र (चक्र) [२७२] = शिरःस्थ सहस्रार-
 पत्र [२५६] ।
 कमजरस [मु० १] = सहस्रारक अमृत [३३६] ।
 काअणावडि [स० ३] = कायसाधक = त्रिधातुमे काय-साधक [१६६] ।
 काया तरुवर [मु० १] = काया तरुवर = काय-धृष्ट श्रेष्ठ [१६६] ।
 कुम्भीरे [कु० १] = कुम्भके = कुम्भकवाणायामे [३४६] ।

गञ्जटाकलि [म० १] = गजन-टाकलि (राज्य वा ध्वनिविशेष—द्र० च० गी०
को० पु० ५६ पा० दि०) = आकाशक अनाहत नाद (द्र० ऐक्य)
= शून्यता-शब्द (सं० टी०) ।

गञ्जणे उठि [मु० २] = गजने उठि = महासुखकमलवन (चक्र)मे जाण (सं० टी०)
= सहस्रार-कमलवन जाण [२८६] ।

गञ्जण [श० १] = गजमने = सहस्रारस्थ शून्यमे (द्र० गञ्जणे उठि, गञ्जण
टाकलि) ।

गिरिवरसिहर [श० १] = गिरिवरशिखर = मेरुशिखर = मेरुदण्ड-
रूप मेरुदर्वतक शिखर [२५१, २५२, २५४] ।

गुली [श० १] = गुहामे लीन = मेरुदण्ड-कन्दरामे लीन [२५४] ।

गङ्गा जवना [डो० १] = गङ्गा-यमुना = इडा-पिङ्गला [२५०] ।

पञ्चली [वि० १] = पटी (सं० टी०) = संकृति-परमार्थ सखद्वयकेँ चरित
केविहारि अवधूतिका नाड़ी (सं० टी०) = सुषुम्ना नाड़ी [२५२] ।

चक्रकोटि [मु० ८] = चक्रकोटि [२५२] ।

चक्रसठि [वि० १] = चौंसठि (विशेषचक्र वा आध्यात्मिक बौद्धकथित-
दल-संख्या) [२६४, २४१] ।

चवडाली [मु० ८, का० ७, पा० १] = चवडा-आली = कुण्डलिनी [२५०-२४२] ।

चन्द सूज [डो० १] = चन्द्रसूर्य = ललना-रसना = इडा-पिङ्गला [२५०, २५२] ।

चान्दसुज [गु० १] — द्र० चन्द सूज ।

चौपट्टि [का० ५] — द्र० चवसठि ।

तथतामाधेँ [क० १] = तथता-नाधेँ = तथारूपता-नाधेँ [३०३] ।

सुर्ने [कु० ३] = सुरीय [३१०] ।

दाहिए वाम [चा० १] = रसना-ललना = पिङ्गला-इडा [२५०] ।

हुलि [कु० १] = ह्रस्वाकार जतय लोन होथि, ताहि महासुखकमलकेँ (सं० टी०)
= सहस्रारक अक्षरकेँ [३३६] ।

देहनधरी विहरइ [का० ४] = देहनगरी विहरैत धर्म = जलमय निज पिण्ड-
पीठमे [२३९] वा देह-देवालयमे [२४०] विहरैत धर्म ।

धमण चमण [गु० १] = इडा-पिङ्गला [२५०] ।

न रवि राशि [स० २] = न पिङ्गला, न इडा [२५०] ।

नलिचोवन [मु० ३] = नलिचोवन = महापञ्चवन = सहस्रार-पञ्चवन [३४३] ।

नाहि [कु० २] = नाडा [२४५-२४३] ।

नाहिशक्ति [का० ४] = नाडी-शक्ति = ब्रह्मनाडीक अन्तःस्थिता शक्ति
= कुण्डलिनी शक्ति वा प्राणशक्ति [२८६] ।

नाद [कु० ३, त० १] = नाद [३००] ।

नाद न बिन्दु न [सं० २] = नाद-बिन्दु किछु नहि [३०२] ।

पञ्चवण [मु० ३] = पञ्चवन = महापञ्चवन = सहस्रारपञ्चवन [३४३] ।

पीठा [कु० १, डो० १] = पीठा = पीठ [३५०-३५६] ।

पत्तिश वागितवति [यो० १] = वत्तीस नाड़ी [२४८] रूप तन्त्रीक ध्वनि ।

वतिय जोइणी [मु० ४] = वत्तीस नाड़ी [२८८] ।

वाम दाहिए [स० २, डो० १, कम्प० १, शा० १] = ललना-रसना
= इडा-पिङ्गला [२५०] ।

वाकनादिथा [का० ३] = ब्रह्मनादिका = ब्रह्मनाडी [२५३] ।

बिन्दुशाव [क० १] = बिन्दु-नाद [३००] ।

सभ [का० ६] = सभ्य [३५१] ।

मणपधण [का० ८] = मण-पवन = मण-प्राण [३२३] ।

मणि [त० २] = मणिपूर [३५६] ।

मणिकुले [गु० १] = मणिकुले = मणिमूले [सं० टी०] = मणिपूरसे [३५६] ।

माक [क० १] = मध्य [३५०, ३५१, ३५४] ।

माकेँ [पा० १] = मध्यमे । द्र० माक ।

मुसा पवण [मु० २] = मूस-पवना = प्राण [२६१] कपी मूस [अवबोगकेँ पूर्व] ।

मेरुशिखर [ना० १] = मेरुशिखर । द्र० गिरिवरसिहर ।

रवि राशी [का० ४] = रवि-राशि = पिङ्गला-इडा [२५०-२५२] ।

चण [श० १, मु० १] = चन = कायपर्वतवन [सं० टी०] = महापञ्चवन ।
द्र० पञ्चवन ।

विरमानन्द [मु० ४] = विलक्षण शुद्ध आनन्द [द्र० ओण्ड गीत] [२०४] ।

(१८६)

शासु [का० ४] = श्वास [३४६] ।

शिखरे [कु० ३] — ३० गिरिवर सिहर ।

सशङ्कर [मु० ४, का० ७, पा० १] = शशधर = बोधिचित्त-चन्द्र [तीव्र गीतक
सं० दी०] अथवा चन्द्रमण्डल = चित्तचन्द्र [३२३], प्राणचन्द्र
[३२४] वा इडा [चन्द्र] नाडीमण्डल [२२०]

सन्निव [श्लो० १, वी० १] = सन्निव = शम-रक्षिण नाडीक सन्निव वा मध्य
[३२०, ३२४] ।

सामु [गु० १] = श्वास [३४६] ।

सुखपुर [कु० ३] = महासुखचक [सं० दी०] = सहस्रारचक [२५६] ।

सुज, सशि [वी० १] = सूर्य-चन्द्र = पिङ्गला-इडा नाडी [२२०] ।

सुसुरा [कु० १] = श्वास [३४६] ।

द्वितीय खण्ड